भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
[illegible]
[illegible]
[illegible]
आत्मकथा गीत [illegible]
भारत-दशा [illegible]
राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' [illegible]
[illegible] २
अमलतास ३[illegible]
लक्ष्मी ३२
पं० श्रीधर पाठक ३६
हिमालय ३७
भारत-गीत ३७
छात्र ३९
आर्य-महिला ४०
श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ४१
दीपावली ४२
भारत के नवयुवक ४३
शक्ति ४५
प्रिय-प्रवास ४६
श्री मैथिलीशरण गुप्त ५१
आगे ५२
एक फूल ५३

श्री [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] जीवन [illegible]
श्री [illegible]
ताज महल
श्री माखनलाल चतुर्वेदी [illegible]
वेदना गीत म[illegible]
बलिदान [illegible]
उन्मूलित वृक्ष [illegible]
कोकिल बोली [illegible] [illegible]
बाबू जयशंकर 'प्रसाद' ८२
गीत ८[illegible]
ओ री मानस की गहराई ८४
अरी वरुणा की शान्त कछार ८५
आँसू ८७
याचना ८[illegible]
[illegible]
बाद[illegible] ९१

[illegible] कौन है	८३	[illegible]	१२९
[illegible]	८४	श्रीमती महादेवी वर्मा	१३०
[illegible] ?	८५	[illegible]	१३१
मेरे प्राणों के [illegible]	८६	[illegible]	[illegible]
मेरे [illegible] पर	८७	[illegible]	१३३
[illegible]	९८	[illegible]	१३४
श्री सुमित्रानन्दन पन्त	९९	[illegible]	१३५
नौका विहार	१०२	[illegible]	१३७
मानव	१०४	[illegible]	१३८
परिवर्तन	१०५	श्री सियारामशरण गुप्त	१४०
[illegible]	१०६	[illegible]	१४१
[illegible]	१०७	[illegible]	१४२
श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन	१०८	[illegible]	१४४
[illegible]	१०९	[illegible]	१४८
[illegible] की बात	११०	श्री भगवतीचरण वर्मा	१४९
विप्लव गायन	१११	[illegible]	१५०
[illegible]	११४	दीवानों का संसार	१५२
[illegible] की [illegible]	११६	[illegible]	१५४
[illegible] पर	११७	श्री रामकुमार वर्मा	१५५
श्री जगन्नाथप्रसाद मिलिन्द	११९	[illegible]	१५७
[illegible]	१२०	[illegible]	१५८
वैभव	१२१	[illegible]	१५९
[illegible]	१२४	[illegible]	१६०
[illegible]	१२५	[illegible]	१६०
अनुरोध	१२८	[illegible]	१६१
जीवन दीप	१३८	[illegible]	१६२

कुछ शब्द

कविता क्या है ?

अपना सुख-दुख, आनंद-वेदना संसार के आगे अभिव्यक्त करने की सुगमता केवल मानव का ही नहीं प्रत्येक प्राणी का स्वभाव है, यहाँ तक कि जड़ पदार्थ भी इसे नीरव भाषा में अपनी अनुभूति व्यक्त करते रहते हैं। यह आत्म-प्रकाशन की इच्छा ही तो साहित्य और विशेष रूप से कविता की उत्पत्ति का कारण है। प्राचीन साहित्य-शास्त्रियों ने कविता की क्या परिभाषा की है, इस विवाद का ही आवश्यकता नहीं समझता, मैं यहाँ आधुनिक कवियों के कविता के विषय में क्या उद्गार अवतरित हुए हैं उन पर एक दृष्टि डाल देना उचित समझता हूँ। श्री सुमित्रानंदन पंत ने एक स्थान पर लिखा है—

वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान।

किसी वियोगी हृदय की आह ही सब से पहले कविता के रूप में प्रकट हो पड़ी होगी। इसी तरह श्री रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है—

अम्बर चीर उठा कर कवि था।

जैसे कोई मनुष्य किसी आघात से तड़पता है तो दर्द से चीख उठता है, वैसे ही संसार की यातना से छटपटा कर जब मानव हृदय कराह उठता है तो अपनी पीड़ा को कविता के रूप में व्यक्त कर देता है। कविता तो बरबस निकलती है। जब हृदय।
तो कविता बह पड़ती है।

अपने जीवन का अस्तित्व देखता है, वह रो पड़ता है। कविता लिखने लगता है। प्रकृति के कण-कण में वह अपने आपको पाता है। इस लिए जहाँ हम कहते हैं कि अंतर्वेदना का व्यक्तीकरण ही कविता है, वहाँ हमारा तात्पर्य अपनी और बाह्य-जगत् की, वेदना को व्यक्त करने से है। पाठकों की सुविधा के लिए हम परिभाषा को इस प्रकार बदल भी सकते हैं—

"अपने अंतर की तथा बाह्य जगत् की वेदना अर्थात् सुख दुःख की अनुभूति का गान ही कविता है।"

कवि 'विश्व-सुंदरी' का घूँघट खोलकर उसका सौंदर्य भावुक-हृदयों को दिखाता है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' की नीचे दी हुई रचना से यह भाव अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है। कहते हैं—

खोल दे संसृति घूँघट आज
भला कवि है किसको लाज ?

अरे भर गहरा पारावार
अतल में रक्खे रत्न अपार,
सीपियों के भीतर चुप-चाप
छिपा रक्खे मोती सुकुमार।

सजा दूँ मानव मन का ताज।
तुम्हारे इस वैभव से आज!
पास आ जाओ ओ आकाश!
दूर कवि से है किसका वास ?

नील अंबर का तान-वितान
जड़ रक्खे तारक-रत्न महान्।
जहाँ जा सकते जिन तक कभी
विकल विहगों के भी तो प्राण!

हिंदी कविता का विकास

वास्तव में यह आश्चर्य की बात है कि प्रत्येक भाषा के साहित्य में पहले कविता अंकुरित हुई है बाद में गद्य। हमारी हिंदी भाषा का तो सारा प्राचीन साहित्य पद्य में है। गद्य तो वास्तव में देखा जावे तो भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के युग में कुछ कुछ तुतला कर बोलने लगा था, किंतु पद्य चंदबरदाई के युग से पहले भी जवान था। चंदबरदाई के रासो में उस समय का समाज अपने सच्चे रूप में अंकित है। कवि ने अपने आस-पास के विश्व को अपने अंतर के रंग में रँग कर पुस्तक पर अंकित कर दिया है।

यह हम पहले बता चुके हैं कि अंतर्जगत् और बाह्यजगत् की वेदना का व्यक्तीकरण ही काव्य है। मनोभावों पर प्रकृति-सौंदर्य का, देश का, समाज का, और राजनीतिक उलट-फेरों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। परिस्थितियों के साथ कविता की भाषा, विषय और उद्देश्य बदलते जाते हैं। यही बात हिंदी के काव्य-साहित्य पर घटित हुई है। प्रारंभ में जब कि देश 'क्षत्रियत्व' में मस्त था, 'वीर गाथाएँ' लिखना ही कवियों का जीवन-धर्म बना रहा। उससे उन्हें धन भी मिला और यश भी। राज-सभाओं में पलने वाले कवियों ने अपनी काव्य-प्रतिभा को राजाओं के गुण गाने के लिए बेच दिया।

धीरे-धीरे देश का शासनाधिकार मुसलमानों के हाथ में जाकर स्थिर हो गया। देशी रजवाड़ों ने विदेशियों को आत्म-समर्पण कर दिया। साथ ही विजेता मुसलमान विजित जाति में अपने धर्म का प्रचार भी करने लगे। इस राजनीतिक तथा धार्मिक परिवर्तन ने देश के साहित्य की धारा को भी बदल दिया। हतारा और आतंकित जनता प्रभु का आश्रय ढूँढने लगी। मुसलमानों के संपर्क में आने के कारण पहले साहित्य में निर्गुण और निराकार की उपासना बढ़ी।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चंद्र के युग से काव्य-साहित्य ने रंग बदला, और इस संग्रह में दी हुई 'भारत-दुर्दशा' जैसी रचनाएँ लिखी जाने लगीं। भाषा भी बदली। ब्रज, तो भी, एक सीमित से साहित्यिक समुदाय की भाषा रही। जब कवि ने जनता के हृदय को प्रतिध्वनित करना प्रारंभ किया तो उसने खड़ी बोली को अपनाया। प्रारंभ में अपरिष्कृत असंस्कृत खड़ी बोली में लिखने के कारण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे प्रतिभाशाली कवि भी इस भाषा में उत्कृष्ट काव्य-रचना न कर सके। हम प्रयत्न करके भी खड़ी बोली के प्रारंभिक काल के कवियों की ऐसी रचनाएँ न पा सके जो आधुनिक काल की रचनाओं के साथ रख सकते इसलिए इस संग्रह में बाबू हरिश्चन्द्र, रायदेवीप्रसाद पूर्ण और श्रीधर पाठक की कुछ कविताएँ देकर संतोष कर लिया है।

इस युग में जो भारतेंदु से प्रारंभ होकर बाबू मैथिली शरण तक रहा, भावनाओं, छंदों और भाषा में क्रांति हुई। वे पुराने शृंगारी कवित्त और सवैये भाग खड़े हुए। उनके स्थान पर देश और समाज की परिस्थिति की ओर कवि की दृष्टि गई।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ी बोली का चोला ही बदल दिया। उसे अधिक परिष्कृत, संस्कृत, बना दिया उसमें ओज के साथ माधुर्य भी भरा। इस युग में राष्ट्रीय-धारा प्रस्फुटित हुई। बाबू मैथिलीशरण गुप्त, पं० रामनरेश त्रिपाठी, श्री माखनलाल चतुर्वेदी जैसे राष्ट्रीय कवि पैदा हुए। इनकी वाणी में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व है। और भी सैकड़ों कवियों के हृदयों में जन्मभूमि का शंख-नाद हो उठा।

इसी युग में प्राचीन कवियों की भांति अंतर्मुखी प्रवृत्ति रखने वाले, या बाह्य जगत् को आत्मसात् करके उसकी वेदना को आत्मानुभूति की भाँति व्यक्त करने वाले बाबू जयशंकरप्रसाद, निराला, पंत, महादेवी और मिलिंद जैसे महान कलाकार भी पैदा हुए। इन्होंने चिरंतन भावनाओं को आकार दिया—ऐसी भावनाओं को जो प्रत्येक

यह चाँद उदित होकर नभ में
कुछ ताप मिटाता जीवन का
लहरा-लहरा यह शाखाएँ
कुछ शोक भुला देती मन का,
कल मुर्झाने वाली कलियाँ
हँसकर कहती हैं मग्न रहो,
बुलबुल तरु की फुनगी पर से
संदेश सुनाती यौवन का
तुम देकर मदिरा के प्याले
मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का
उपचार न जाने क्या होगा?

उस असंदिग्ध, अज्ञात लोक की प्राप्ति के लिए कठिन तपस्या करने के पक्ष में यह संप्रदाय नहीं है।

इस तरह आधुनिक कविगण हिंदी-कविता-साहित्य में विविध विषय, भावनाएँ और विविध दार्शनिक तत्त्वों का समावेश कर रहे हैं। हमारे इस संग्रह में सभी तरह की रचनाओं को स्थान दिया गया है!

कविता में विविधता

एक ही काल की कविता में अपितु एक ही कवि की कविता में कभी-कभी बड़ा वैषम्य पाया जाता है। इसका कारण यह है कि एक ही काल में, एक ही देश में सुखी, दुखी, आशावादी, छायावादी और हालावादी सभी प्रकार की मनोवृत्ति वाले हृदय होते हैं, इसलिए साहित्य में विविधता होना शुभ चिह्न है। संपूर्ण साहित्य संपूर्ण देश के हृदय का चित्र बन जाता है। एक ही कवि कभी एक सिद्धांत का

आज सोने का संध्याकाल
जल रहा जतुगृह-सा विकराल !

(पल्लव)

कैसी तीखी वेदना है कवि के जीवन में ! कितना वह बेचैन है ! कवि समझता है रोते रहना ही मानो विश्व का धर्म है। वह कहता है—

सिसकते हैं समुद्र-से मन
उमड़ते हैं नभ से लोचन,
विश्व-वाणी ही है क्रंदन,
विश्व का काव्य अश्रु-कण !
गगन के भी उर में है घाव,
देखती ताराएँ भी राह !

(पल्लव)

किंतु इसी पीड़ा के रंग को ही सारे विश्व में देखने वाला जीवन को अधिक दार्शनिक दृष्टि से देखने लगता है। वह दुःख और सुख दोनों का स्वागत करता है। उसकी बेचैनी कम हो जाती है। वह लिखता है—

सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन,
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि से ओझल हो घन,
जग पीड़ित है अति दुख से,
जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव जग में बँट जावे,
दुख-सुख से औ सुख-दुख से !
अविरत दुख है उत्पीड़न,
अविरत सुख भी उत्पीड़न,

मानवता अनुभव करना और इसी अनुभूति को कविता में व्यक्त करना छायावाद है। छायावादी कवि जड़-प्रकृति में भी उसी चेतन का दर्शन करता है जिस चेतन ने उसको भी जीवन दिया है।

उदाहरण के लिए श्री सुमित्रानन्दन पंत की 'छाया' कविता को लीजिए। उन्होंने 'छाया' को चेतनामय वस्तु के रूप में सम्बोधन किया है और अंत में वे कहते हैं—

हाँ सखि! आओ बाँह खोल, हम
लग कर गले, जुड़ा लें प्राण,
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में
हो जावें द्रुत अंतर्धान

यहाँ छाया के साथ कवि ने कितनी आत्मीयता प्रदर्शित की है। इन पंक्तियों से पहले भी पंत जी लिखते हैं—

हे सखि, इस पावन अंचल से
मुझको भी निज मुख ढँककर,
अपनी विस्मृत सुखद गोद में
सोने दो सुख से क्षण भर।
चूर्ण-शिथिलता-सी अँगड़ा कर
होने दो अपने में लीन।
पर-पीड़ा से पीड़ित होना
मुझे सिखा कर कर मद-हीन!

इन पंक्तियों में कवि 'छाया' में मानवीय भावनाओं का आरोप करता है। उसमें अपने अस्तित्व को लीन करना चाहता है—उससे कुछ सीखना चाहता है।

वर्तमान छायावादी कवियों की रचनाओं को पढ़कर हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जिन कविताओं में कवि प्रकृति में मानवीय भावनाओं का आरोप करके उसके साथ अपनी आत्मीयता व्यक्त करता है वे

छायावादी [illegible] रहस्यवादी कहते [illegible] है, आत्मा [illegible] मानते हैं, तब तो पहले वाली [illegible] असीम के दर्शन करने को [illegible] भी छायावाद [illegible] प्रकृति में आत्मा का सम्बन्ध स्थापित करता, और [illegible] असीम के दर्शन करना एक ही बात है।

महादेवी वर्मा की निम्नलिखित कविता छायावाद का अच्छा उदाहरण है—

प्रिय ! सान्ध्य गगन,
मेरा जीवन !
यह क्षितिज बना धुंधला विराग,
नव अरुण अरुण मेरा सुहाग,
छाया सी काया वीतराग,
सुधि भीने स्वप्न रँगीले घन !
साधों का आज सुनहलापन,
घिरता विषाद का तिमिर सघन,
सन्ध्या का नभ से मूक मिलन,
यह अश्रुमती हंसती चितवन
लाता भर श्वासों का समीर,
जग से स्मृतियों का गंध धीर,
सुरभित है जीवन-मृत्यु-तीर,
रोमों में पुलकित कैरव-वन !

संध्या के साथ महादेवी जी ने एकरूपता का अनुभव किया है। यही एकरूपता अनुभव करना छायावाद है।

छायावाद से भी ऊँची भावना है रहस्यवाद की। जब कवि अनंत [illegible] साथ अपने संबन्ध का अनुभव करता है और उस अनुभूति को

इशारों—गानों—में व्यक्त करता है जो ऐसी रचनाएँ रहस्यवादी कहलाती हैं। रहस्यवादी कवि अनन्त के साथ अपने तरह तरह के सम्बन्धों की कल्पना करता है, उस के विरह की व्यथा, या मिलन के आनन्द को कविता में लिखता रहता है।

रहस्यवाद के तीन दर्जे होते हैं। पहला यह जब कि कवि हृदय में एक बेचैनी सी अनुभव करता है, जब उसे इस जगत् के प्रति विराग-सा उत्पन्न होता है, उसे ऐसा ज्ञान पड़ता है जैसे उसका कुछ खो गया है, एक अभाव सा वह अनुभव करता है। श्री हरिकृष्ण प्रेमी के रहस्यवादी काव्य 'अनंत के पथ पर' के प्रारंभिक पृष्ठों में इस बेचैनी का बहुत सुन्दर वर्णन है। हम कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत करते हैं—

नभ के पर्दे के पीछे
करता है कौन इशारे ?
सहसा किसने जीवन के
खोले हैं बन्धन सारे ?
जग के सुख-दुख से मेरा
अब टूट चुका है नाता,
पर, समझ नहीं पाई हूँ
है मुझको कौन बुलाता ?
किसका अभाव मानस में
सहसा शशि-सा आ चमका ?
है क्या रहस्य बतला दे
कोई इस अंतर्तम का ?
इन सरल-तरल नयनों में
किसकी उज्ज्वल छवि छाई ?

तुमि आमार अनुभावे
कोथाओ नाहि बाधा पावे,
पूर्ण एका देवे देखा,
सरिये दिये माया के
मन के आमार काया के ॥

"मैं अपने मन को, अपनी काया को और इस काली छाया को एक दम मिटा देता हूँ। अपने मन और शरीर को आग में जला देना चाहता हूँ, साथ ही इस माया को कुचल डालना चाहता हूँ। मैं उठा जाता हूँ यहीं इन्हें आसन लगा कर बैठे हुए देख कर लाज से मर जाता हूँ। हे हरि, इस प्रकार छाया, मेरे शरीर को चुन लो। मेरी शक्ति से तुम्हें कहीं भी बाधा न पड़ेगी। मेरी माया को हटा कर तुम मेरे शरीर को एकान्त में अपना पूर्ण दर्शन दो।"

कवि अपने शरीर के अस्तित्व को भी निष्काम-मिलन में बाधक समझता है।

रहस्यवाद की तीसरी कोटि है वह, जब माया का आवरण दूर हो जाता है और परमात्मा और आत्मा का मिलन हो जाता है। दोनों में एकरूपता स्थापित होती है। प्रेमी जी की 'अनंत के पथ पर' पुस्तक की ये पंक्तियाँ इस स्थिति का चित्र खींचती हैं—

इन चन्द्र वसुओं में तो
उस पावन सा है काया,
खुल गए नयन अन्तर के
जब उसने रूप दिखाया।
बुझ गए सूर्य, शशि, तारे,
हट गए सिंधु व अम्बर।
रुक गई यहीं पर साँस,
मिट गया यहीं पर अन्तर !

[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

तुमि आमार अनुभावे
कोथाओ नाहि बाधा पावे,
पूर्ण एका देवे देखा,
सरिये दिये माया के
मन के आमार काया के ॥

"मैं अपने मन को, अपनी काया को और इस काली छाया को एक दम मिटा देता हूँ। अपने मन और शरीर को आग में जला देना चाहता हूँ, साथ ही इस माया को कुचल डालना चाहता हूँ। मैं जहाँ जाता हूँ वहीं इन्हें आसन लगा कर बैठे हुए देख कर लाज से मर जाता हूँ। हे हरि, इस अगाध छाया, मेरे शरीर को तुम लो। मेरी शक्ति से तुम्हें कहीं भी बाधा न रहेगी। मेरी माया को हटा कर तुम मेरे शरीर को एकान्त में अपना पूर्ण दर्शन दो।"

कवि अपने शरीर के अस्तित्व को भी प्रियतम-मिलन में बाधक समझता है।

रहस्यवाद की तीसरी कोटि है वह, जब माया का आवरण दूर हो जाता है और परमात्मा और आत्मा का मिलन हो जाता है। दोनों में एकरूपता स्थापित होती है। प्रेमी जी की 'अनंत के पथ पर' पुस्तक की ये पंक्तियाँ इस स्थिति का चित्र खींचती हैं—

इन बन्द चक्षुओं में तो
जल प्लावन सा है आया,
खुल गए नयन अन्तर के
जब उसने रूप दिखाया।
छुप गए सूर्य, शशि, तारे,
हट गए सिंधु भू अम्बर।
रुक गई वहीं पर नौका,
मिट गया वहीं पर अन्तर !

किसने मेरे प्राणों में
अपनी तसवीर बनाई?
[illegible] [illegible] का मेरे
[illegible] 'अज्ञात' कहलाना।
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का
[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाना।

रहस्यवाद की दूसरी स्थिति [illegible] [illegible] है जब यह पता चल जाता है कि इस वेदना का कारण [illegible] [illegible] से आत्मा का वियोग है। आत्मा और परमात्मा के बीच [illegible] में, 'माया' ने खाई खोद रखी है। साधक इस माया को नष्ट करने का उद्योग करता है। महाकवि रवीन्द्रनाथ की निम्नलिखित कविता में इस मनोदशा का सुन्दर वर्णन हुआ है। वे लिखते हैं—

मन के, आमार काया के,
आमि एकबार मिलिये दिते
चाइ, ए कालो छाया के।
ए आगुन ज्वलिये दिते,
ए मायार तालिये दिते,
ए चरण गलिये दिते,
ढालिये दिते माया के,
मन के आमार काया के।
स्थान आइ सबाइ एक
आसन जुड़े बसन रके
लाज मरि, लआगा हारि,
एइ सुनिविड़ छाया के।
मन के आमार काया के।

तुमि आमार अनुभावे
कोयाओ नाहि बाधा पावे,
पूर्ण एका देवे देखा,
सरिये दिये माया के
मन के आमार काया के ॥

"मैं अपने मन को, अपनी काया को और इस काली छाया को एक दम मिटा देता हूँ। अपने मन और शरीर को आग में जला देना चाहता हूँ, साथ ही इस माया को कुचल डालना चाहता हूँ। मैं जहां जाता हूँ वहीं इन्हें आसन लगा कर बैठे हुए देख कर लाज से मर जाता हूँ। ए हरि, इस अगाढ़ छाया, मेरे शरीर को चुन लो। मेरी शक्ति से तुम्हें कहीं भी बाधा न पड़ेगी। मेरी माया को हटा कर तुम मेरे शरीर को एकान्त में अपना पूर्ण दर्शन दो"

कवि अपने शरीर के अस्तित्व को भी प्रियतम-मिलन में बाधक समझता है।

रहस्यवाद की तीसरी कोटि है यह, जब माया का आवरण दूर हो जाता है और परमात्मा और आत्मा का मिलन हो जाता है। दोनों में एकरूपता स्थापित होती है। प्रेमी जी की 'अनंत के पथ पर' पुस्तक की ये पंक्तियाँ इस स्थिति का चित्र खींचती हैं—

इन बाह्य चक्षुओं में तो
जल प्लावन सा है आया,
खुल गए नयन अन्तर के
अब उसने रूप दिखाया।
बुझ गए सूर्य, शशि, तारे,
हट गए सिंधु भू अम्बर।
रुक गई यहीं पर नौका,
मिट गया यहीं पर अन्तर!

भीषण बेचैनी, अशांति और वेदना ही हाथ लगती है। उस वेदना की पूँजी को छंदों में भर कर तरह तरह के रंग-रूप देकर संसार के सामने लाया जा सकता है पर उससे वे ही मुग्ध होते हैं, जिनकी आत्मा और हृदय का धरातल अधिक ऊँचा नहीं होता। लोक-प्रिय कवि बनने के लिए ऐसी रचनाएँ उपयोगी हो सकती हैं—पर लोक-प्रिय कवि उत्तम कवि भी होता है, ऐसा मानना भ्रम से खाली नहीं है। हमारे कई नवयुवक हिंदी कवि मूर्त को ही अमूर्त समझकर दीवाने हो उठे हैं—असंयम की एक लहर सी वे प्रवाहित करते दिखाई देते हैं, यह शुभ चिह्न नहीं है।

कला की दृष्टि से वर्तमान हिंदी कविता पर्याप्त ऊँची उठ रही है। भाषा परिमार्जित और कोमल होती जा रही है। नवीन-नवीन भावनाएँ भरी जा रही हैं। संसार की किसी भी भाषा में हिंदी की कविताएँ अनुवादित होकर लज्जित न होंगी।

आजकल हिंदी में गीत लिखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। श्री महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, निराला, 'बच्चन' आदि ने सुन्दर गीत लिखे हैं। संगीत और काव्य का यह सम्मिलन कविता को लोक-प्रिय बनाने में सहायक होगा इसमें संदेह नहीं। बंगाल में रवि बाबू के गान घर घर में गाए जाते हैं। हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब हमारे हिंदी-भाषी घरों में हिंदी के प्रसिद्ध कवियों के मानपूर्ण गीत गाए जाएँगे। हमने इस संग्रह में कुछ गीत भी देने का प्रयत्न किया है।

हमने प्रयत्न किया है कि इस संग्रह में आधुनिक हिंदी कविता की सभी प्रवृत्तियों की रचनाएँ दें। संग्रह करते समय सुरुचि की ओर विशेष ध्यान रखा है, इसी कारण शृंगार रस की कविताएँ हम नहीं दे सके; फिर भी इस बात का प्रयत्न किया है कि संग्रह रूखा न बन जाय।

हमारा यह प्रयत्न सफल हुआ है या असफल यह तो पाठकों के निर्णय का विषय है। —सम्पादक

निकाल कर, सभाएँ स्थापित करके तथा साहित्य-सेवियों को आर्थिक सहायता देकर वे हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि का निरंतर प्रयत्न करते रहे। इसीलिए तो वे नवीन हिन्दी साहित्य के जन्मदाता समझे जाते हैं।

इनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। इन्होंने काव्य, स्तोत्र, परिहास, ऐतिहासिक ग्रंथ, नाटक, उपन्यास और आख्यायिकाएँ आदि सभी कुछ लिखा है। ब्रज, खड़ी बोली, संस्कृत, बँगला, गुजराती और पंजाबी आदि अनेक भाषाओं में इन्होंने कविताएँ लिखी हैं, जो बहुत सरल तथा हृदयग्राही हैं। छंदों में भी इन्होंने क्रांति की है। हिन्दी के प्राचीन छंदों के अतिरिक्त इन्होंने नए छंदों में भी कविताएँ लिखी हैं। इस संग्रह में इनकी प्रात-समीरन रचना इसका नमूना है। यह बँगला का पयार छंद है।

हार्यौ भाग अभाग जीत लहि विजय निसान हयो री।
तब स्वाधीनपनो धन-बुधि-बल पछुआ माहिं लयो री॥
शेष कछु रहि न गयो री।
उठो उठो भैया क्यों हारो अपुन रूप सुमिरो री।
राम युधिष्ठिर विक्रम की तुम झटपट सुरत करो री॥
दीनता दूर धरो री।
कहाँ गए क्षत्री किन उनके पुरुषारथहिं हरो री।
चूड़ी पहिरि, स्वाँग बनि आए, धिक धिक सघन कह्यो री॥
भेस यह क्यों पकरो री॥
उठो उठो सब कमरन बाँधो शस्त्रन सान धरो री।
विजय-निसान बजाइ बावरे आगेइ पाँव धरो री॥
छबीलिन रँगन रँगो री॥
आलस मैं कछु काम न चलिहै सब कछु तो बिनसो री।
छिन गयो धन-बल, राज-पाट सब, कोरो नाम बचो री॥
तऊ नहिं सुरत करो री॥
फूँक्यो सब कछु भारत नै कछु हाथ न हाथ रहो री।
तब रोअन लिय बैठी गाईं भली भई यह होरी॥
भलो तेहवार भयो री॥

प्रात-समीरन

मंद मंद आवै देखो, प्रात समीरन
करत सुगंध चारों ओर विकीरन।
गात सिहरात तन लागत मोरन
रैन निद्रालस जन-सुखद चंचल।
नेत्र सीस सीरे होत सुख पावै गात
आवत सुगंध लिए पवन प्रभात।

छुअत सीतल सबै होत गात भाव
स्नेही के परस सम पवन प्रभात।
लिए यात्री फूल-गंध चलै तेज धाय
रेल रेल आवै लखि रेल प्रात-वाय।
विविध उपमा धुनि सौरभ को भौन
उड़त अकास कवि-मन किधौं पौन।

अस्थिर जीवन

साँझ सबेरे पंछी सब क्या कहते हैं कुछ तेरा है।
हम सब इक दिन उड़ जाऐंगे यह दिन चार बसेरा है॥
आठ पेर नौबत बज बजकर तुमको याद दिलाती है।
जाग-जाग तू देख घड़ी यह कैसी दौड़ी जाती है॥
आँधी चलकर इधर उधर से तुमको यह समझाती है।
चेत चेत जिन्दगी हवा सी उड़ी तुम्हारी जाती है॥
पत्ते सब हिल-हिल कर पानी हर-हर करके बहता है।
हर के सिवा कौन तू है ये यह परदे में कहता है॥
दिया सामने खड़ा तुम्हारी करनी पर सिर धुनता है।
इक दिन मेरी तरह बुझोगे कहता तू नहिं सुनता है॥

भारत-दुर्दशा

भारत के भुज-बल जग रक्षित;
भारत-विद्या लहि जग शिक्षित।
भारत-तेज जगत विस्तारा;
भारत-भय कंपत संसारा।
जाके तनिकहिं भौंह हिलाए;
थर-थर कंपत नृप डरपाए।

तोरयो दुर्गन, महल ढहायो;
तिनही में निज गेह बनायो।
ते कलंक सब भारत केरे;
ठाढ़े अजहूँ लखो घनेरे।
कासी, प्राग, अजोध्या-नगरी;
दीन-रूप सम ठाढ़ी सगरी।
चंडालहु जेहि निरखि घिनाई;
रही सबै भुव मुँह-मसि लाई।
हाय पंचनद, हा पानीपत;
अजहुँ रहे तुम धरनि बिराजत।
हाय चितौर निलज तू भारी;
अजहुँ खरो भारतहि मँझारी।
जा दिन तुव अधिकार नसायो;
सो दिन क्यों नहिं धरनि समायो।
रह्यो कलंक न भारत नामा;
क्यों रे तू बारानसि धामा।
सब तजिकै, भजिकै दुख भारो;
अजहुँ बसत करि भुव मुख कारो।
अरे अग्रवन तीरथराजा;
तुमहुँ बचे अबलौं तजि लाजा।
पापिनि सरजू नाम धराई;
अजहूँ बहति अवध-तट जाई।
तुममैं जल नहिं जमुना, गंगा;
बढ़हु वेगि करि तरल तरंगा।
धोवहु यह कलंक की रासी;
बोरहु किन झट मथुरा, कासी।

(६)

जगत में तू ही बार अनेक,
प्रकट है किए गये बलवान;
भरे इतिहास में वृत्तान्त,
तिहारे कुटुंब के विख्यात।

(७)

रूम, यूनान, मिस्र वा रोम,
चीन, जर्मनि, वा इंग्लिस्तान,
आफ्रिका, श्याम देश वा हिन्द,
आस्ट्रेलिया, अमेरिका, जापान।

(८)

सकल को जैसो है इतिहास,
होय सो नवीन वा प्राचीन,
ठौर ही ठौर भरी तेहि माँहि,
युद्ध की कथा महादुखदीन।

(९)

अरे तू जगत उजाड़नहार!
अरुण दुखदान! भयावन! भीम!
कहाँ लौं वरनूँ हे नरराज!
तिहारे निन्दित कर्म असीम!

अमलतास

(प्रचण्ड-ग्रीष्म की दोपहरी में सरस-पुष्प-गुच्छों से आच्छादित अमलतास के वृक्ष को देखने पर उक्ति)

(१)

हरीले अमलतास नव-गात, तुम्हारे दरसीले अभिराम,
रंगीले पीले सुमन-समूह, धूप काल में भी छवि-धाम।

देख कुछ रोचक नए विचार, हृदय में उदय हुए दो-चार;
[illegible] का है यह आविर्भाव, रसिक प्रति प्रीति-पूर्ण उपहार।

(२)

[illegible] विपिन-नासिका-रूप सघन किंशुक प्रसून परिवार;
[illegible] गुलाब कचनार, विमल सेमल, अनार, गुलनार।
[illegible] की यह भूमि, बनी अनुराग-समुद्र अपार;
[illegible] ग्रीष्म को आज, किए देती है ज्वाला चार।

(३)

[illegible] जुही, अम्लान चाँदनी, कुमुद, चमेली-फूल;
[illegible] कनेर, निवारी फलवारी छवि मूल।
[illegible] निर्मल कांति, हुई निर्मूल मलिनता संग;
[illegible] सभी निदान, किए इस आतप ने बदरंग।

(४)

[illegible] बारबार, चिरजीवी द्रुम सुखमागार;
[illegible] प्रचंड अखंड, हुई नय हेतु चन्द्रिका मार।
[illegible] सुविधान, अकिंचन के धन हैं भगवंत;
[illegible] मीन, धीर धर दरसै पुन वसन्त।

(५)

[illegible] कुल संत विचारा उसका सुखद निदान;
[illegible] की मंद, गया उस सामग्री पर ध्यान।
[illegible] अनुपात के संग, द्रुमों में अमलतास न भक्त;
[illegible] निदाघ प्रतिकूल दहन में तेरे रहा अशक्त।

लक्ष्मी

"[illegible]", "रमा", पद्ममुखी, ललामा,
पद्मासना, पद्मनयनाभिरामा;

पद्मेहस्ते, पद्मपदी, उदारा,
देवी "जयंती", जय विष्णुदारा ।

(२)

"श्री", हेमवर्णी "हरिणी", सुशीला,
दारिद्र्य-बाधा-हरिणी सुशीला;
आनन्द-रूपा, प्रकृति-स्वरूपा,
सो वंदनीया जननी अनूपा ।

(३)

मनोहरा, पद्मधरा, प्रसन्ना,
सुखाकरा, साधु-सुर-प्रपन्ना;
हिरण्यरम्या, नर-राज-कन्या,
सुरामरम्या, वर-रूप धन्या ।

(४)

मातंग-हुंकार विनोदिनी है,
तुरंग-पूर्वा, रथ-मोदिनी है;
सुनागरी, सागर-वासिनी है,
गुनागरी, विष्णु-विलासिनी है ।

(५)

सुवर्ण-लता-सी, सुभक्ति-प्रभा-सी,
त्रिया-छटा-सी, सुमना सुधा-सी;
"सूर्या", "रमा", कांचन-वल्लिका-सी,
"चन्द्रा", शुभा, मंजुल मल्लिका-सी ।

(६)

संपत्करी, सर्व-व्यथा-हरी है,
तेजस्करी भूरि यशस्करी है;
लोकेश्वरी देवगणेश्वरी है,
अन्नेश्वरी, प्राण-धनेश्वरी है

(७)

देवेन्द्र के लोक प्रभास तेरो,
यक्षेन्द्र के ओक विभास तेरो;
साकेत-कैलास-निवास तेरो,
श्री विष्णु के पास विलास तेरो ।

(८)

अज्ञान को तू रवि-मालिका है,
संकष्ट को काल-करालिका है;
दया-समुद्रा जन-पालिका है,
अनूप माता जल-बालिका है ।

(९)

विद्यावती है, गरिमावती है,
प्रज्ञावती है, महिमावती है,
तू शंकरी है, अरु भारती है,
प्रभावती है, प्रतिभावती है ।

(१०)

व्यापार-वीथी बिच तू उजेरी,
संसार-खेती बिच तू हरेरी;
उद्योग-उद्यान-वसन्त तू है,
दिगंत में सार अनन्त तू है ।

(११)

वसन्त में पुष्प ललाम तू है,
वर्षा-विहारी घनश्याम तू है;
हेमन्त में चारु तुषार तू है,
संसार-सत्ता अरु सार तू है ।

(१२)

तू मंगला मंगलकारिणी है,
सद्भक्त के धाम विहारिणी है,
माता सदा पूर्ण-पिता-समेता,
कीजै हमारे चित में निकेता ।

(१३)

तू अंब मो पै अनुकूल जो है,
संसार में, सो, प्रतिकूल को है ?
आदित्य-वर्णा वर विश्वरानी,
मैं तोहि बंदौं मन-काय-बानी ।

(१४)

श्री वासवी की जय माधवी की,
सुमालिनी की वनमालिनी की;
सुरोत्तमा की सु-मनोरमा की,
त्रिलोक-मा की अखिलोपमा की ।

पं० श्रीधर पाठक

[illegible] —मृत्यु संवत् १९८५]

[illegible] और [illegible] दोनों में सुन्दर [illegible] का शब्द-योजना [illegible] निरीक्षण और [illegible] है इनकी आराध्य- [illegible], ऊजड़ग्राम, [illegible] मनोविनोद, श्री [illegible] गीत, भारत- [illegible] है [illegible] लिखने में भी [illegible] का पद्यानुवाद [illegible] नाम से बहुत ही [illegible]

[illegible] हृदय में राष्ट्रीय [illegible] है [illegible] रचनाएँ आज [illegible]

[illegible] का बाहुल्य है, [illegible] के अनुकूल नहीं है [illegible] और माधुर्य कम [illegible]

हिमालय

अगणित पर्वत-खंड चहूँ दिसि देत दिखाईं।
सिर परसत आकाश, चरण पाताल छुआईं।
शोहत सुंदर खेत-पाँति तर ऊपर छाईं।
मानहु विधि पट हरित स्वर्ग-सोपान बिछाईं।
गहरे गहरे गर्त लघु दीरघ गहराईं।
शब्द करत ही घोर प्रतिध्वनि देत सुनाईं।
जहाँ निपट निरशंक, वन्य पशु सुख सों विचरत।
करत केलि कल्लोल, मुदित आनंदित विहरत।
कहुँ ईंधन को ढेर सिद्ध आवास बनावत।
कहुँ समाधि-स्थित जोगी की गुहा सुहावत।
विविध विलच्छन दृश्य, सृष्टि-सुखमा-सुख-मंडल।
नन्दन-वन-अनुरूप भूमि-अभिनय-रङ्गस्थल।
प्रकृति-परम-चातुर्य अनूपम अपरज-आलय।
धीधर-दृग छकि रहत अटल छवि निरख हिमालय।

भारत-गीत

१

जय जय प्यारा, जग से न्यारा
शोभित सारा, देश हमारा,
जगत-मुकुट, जगदीश-दुलारा
जग-सौभाग्य सुदेश।
जय जय प्यारा भारत-देश।

२

प्यारा देश, जय देशेश,
जय अशेष, सदय विशेष,
जहाँ न संभव अघ का लेश,
संभव केवल पुण्य-प्रवेश।
जय जय प्यारा भारत-देश।

३

स्वर्गिक शीश-फूल पृथिवी का,
प्रेम-मूल, प्रिय लोकत्रयी का,
सुललित प्रकृति-नटी का टीका,
ज्यों निशि का राकेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

४

जय जय शुभ्र हिमाचल शृंगा,
कल-रव-निरत कलोलिनि गंगा,
भानु-प्रताप-चमत्कृत अंगा
तेज-पुंज तपवेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

५

जग में कोटि-कोटि जुग जीवे,
जीवन-सुलभ अमी-रस पीवे,
सुखद वितान सुकृत का सीवे,
रहे स्वतंत्र हमेश।
जय जय प्यारा भारत देश।

छात्र

अहो छात्र-वर-वृंद, नव्य-भारत सुत, प्यारे।
मातृ-गर्व-सर्वस्व, मोद-प्रद, गोद-दुलारे।
अहो भव्य भारत भविष्य निशि के उजियारे।
शुभ आशा विश्वास व्योम के रवि, विधु, तारे।
गृह-जीवन-नव-ज्योति, प्रेम प्रकृत स्रोत तुम।
विनय-शील-उद्योत, जगत के सुकृत स्रोत तुम।
मातृभूमि के प्राण, मातृ सुख-संप्रदान तुम।
मातृ-सत्त्व-संत्राण-कुशल, भुज-बल-निधान तुम।
आर्य-वंश-अक्षय-वट के अभिनव प्रवाल तुम।
आर्य संत-जीवन-पट के सुठि तंतु-जाल तुम।
आर्य-वर्ण-आश्रम-उपवन के फल-रसाल तुम।
आर्य-कीर्ति-तंत्री-गुण के स्वर, शब्द, ताल तुम।
निज सुजन्म-संतति सरोज-वन के मृणाल तुम।
मानव-कुल-मानस ह्रद के मंजुल मराल तुम।
जग-सुकृत्य-रत भारत के सौभाग्य-भाल तुम।
प्रिय स्वदेश अंतर आत्मा के अंतराल तुम।
सुरुचि, सुवृत्ति, सुतेज सुप्रेरित-मति-विशाल तुम।
सुघर, सुपूत, सुमाता के लाड़ले लाल तुम।
भारत-लाज-जहाज-सुदृढ़-सुठि-कर्णधार तुम।
भारति-कंठ-विहार विशद-मंदार-हार तुम।
निज-अभिरुचि, निज भाषा-भूषा-भेष-विधाता।
निज सत्ता, निज पौरुष, निज स्वत्वों के त्राता।
निज-परता-भ्रम-रहित करो निज-हित-विचार तुम।
हित-परता-क्रम-सहित करो पर-हित-प्रचार तुम।

[illegible] हरो क्लेश तुम।
[illegible] का अभिनिवेश तुम।
[illegible] करो मत्ता-प्रसंग तुम।
[illegible] भरो उर में उमंग तुम।
[illegible] बनो नर-प्रवर वंद्य तुम।
[illegible] सम्मानित तुम।

आर्य-महिला

[illegible] आर्य कुल-प्यारी।
[illegible] आर्य-लोक उजियारी।
[illegible] की स्वामिनि।
[illegible] अन्तर्यामिनि।
[illegible] सजीवनि।
[illegible] सती-मणि।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] धारिणी।
[illegible] वारिणि।
[illegible] जगाओ।
[illegible] बहाओ।
[illegible] जगाओ।
[illegible] त्यागो।
[illegible] आर्य कुल कामिनि।
[illegible] गेह की स्वामिनि।

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

(जन्म संवत् १६२२)

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय उन महान् कवियों में से हैं जिनका खड़ी बोली के निर्माण में प्रभाव-शाली हाथ रहा है। इन्होंने ब्रजभाषा में भी सफलता पूर्वक सरस कविताएँ लिखी हैं। भाषा पर इनको पूर्ण अधिकार प्राप्त है। कठिन से कठिन, सरल से सरल और अनुप्रासयुक्त भाषा लिखने में ये बेजोड़ हैं। इनका 'प्रिय-प्रवास' उच्चकोटि की संस्कृत-प्राय साहित्यिक खड़ी बोली में लिखा महाकाव्य है और 'बोल-चाल' 'चोखे चौपदे' आदि ग्रंथ मुहावरेदार साधारण बोलचाल की भाषा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। गद्य-लेखन में भी ये सिद्ध-हस्त हैं। 'ठेठ हिंदी का ठाठ' नामक इनका उपन्यास जिसमें संस्कृत और उर्दू के शब्दों का प्रयोग नहीं किया गया है, अपितु ठेठ हिंदी की शोभा दिखाई गई है, 'सिविल सर्विस' की परीक्षा में पाठ्य पुस्तक नियत है। शब्दों के तो ये जादूगर हैं।

'प्रिय प्रवास' महाकाव्य पर इन्हें हिंदी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिया गया है। ये दो बार हिंदी-साहित्य सम्मेलन के सभापति रह चुके हैं।

भारत के नवयुवक

जाति-धन, प्रिय नवयुवक-समूह,
विमल मानस के मंजु मराल;
देश के परम मनोरम रत्न,
ललित भारत-ललना के लाल।

लोक की लाखों आँखें आज,
लगी हैं तुम लोगों की ओर;
भरी उनमें है करुणा भूरि,
लालसामय हैं ललकित कोर।

उठो, लो आँखें अपनी खोल,
विलोको अवनी-तल का हाल;
अनालोकित में भर आलोक,
करो कमनीय कलंकित भाल।

भरे उर में जो अभिनव ओज,
सुना दो वह सुंदर झनकार;
ध्वनित हो जिससे मानस-यंत्र,
छेड़ दो उस तंत्री के तार।

रगों में बिजली जावे दौड़,
जगे भारत-भूतल का भाग;
प्रभावित धुन से हो भरपूर,
उमग गाओ वह रोचक राग।

हो सके जिससे सुगठित जाति,
सुकंठों में गूँजे वह तान;
भाव जिनमें हों भरे सजीव,
करो ऐसे गीतों का गान।

[illegible] यज्ञ [illegible] —
[illegible] दूर
[illegible] सफल साधना-ज्योति,
[illegible] दूर
[illegible] तुम
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] तुम [illegible]
[illegible]-अनुराग [illegible]
बनो तुम मूर्तिमान अनुराग
[illegible] के कहलाओ नाथ,
[illegible] अबला जन-दुख अविलंब;
सबलता करो जाति को दान,
अबल जन के होकर अवलंब।
[illegible] असहायों के सर्वस्व,
दुःख जन की अनुपम अनुभूति,

वृद्ध जन के लोचन की ज्योति,
अकिंचन जन की विपुल विभूति।
सरस रुचि रुचिर कंठ के हार,
सुजीवन-नव-घनमत्त-मयूर;
लोक-भावुकता तन-शृंगार,
सुजनता-भव्य-भाल सिंदूर।
भरो भूतल में कीर्ति-कलाप,
दिखा भारत-जननी से प्यार;
करो पूजन उनका पद-कंज,
बना सुरभित सुमनों का हार।

शक्ति

जिसे है मानवता का ज्ञान,
नहीं पशुता से जिसकी प्रीति;
बिना त्यागे विनयन का पंथ,
लोक-नियमन है जिसकी नीति।
क्रोध जिसका है शांति-विहीन;
लोभ जिसका लालसा-विहीन;
मोह जिसका है महिमावान;
काम जिसका अकामनाधीन।
न मद में मादकता का नाम,
न तन में अतन-ताप का लेश;
रूप जिसका है लोक-ललाम,
अवनि-रंजन है जिसका वेश।
न मस्तक पर कलंक का अंक,
न जिसका लहू भरा है हाथ;

बोला—कोई जतन उन को आप ऐसा बतावें,
मेरे प्यारे कुँवर मुझ से आज न्यारे न होवें।
मैं बूढ़ा हूँ यदि कुछ कृपा आप चाहें दिखाना,
तो मेरी है विनय इतनी श्याम को छोड़ जावें।
हा! हा! सारी ब्रज अवनि का प्राण है लाल मेरा
क्यों जीवेंगे हम सब उसे आप ले जायँगे जो?
रत्नों की है न तनिक कमी आप लें रत्न ढेरों,
सोना-चाँदी सहित धन की गाड़ियाँ आप ले लें।
गायें ले लें गज तुरग भी आप ले लें अनेकों,
लेवें मेरे न निजधन को जोड़ता हाथ मैं हूँ।
जो है प्यारी अवनि ब्रज की यामिनी के समाना,
तो तातों के सहित सिगरे गोप हैं तारकों से।
मेरा प्यारा कुँवर उसका एक ही चन्द्रमा है,
छा जावेगा तिमिर वह जो दूर होगा दृगों से।
सच्चा प्यारा सकल ब्रज का वंश का है उजाला,
दीनों का है परम धन औ वृद्ध का नेत्र-तारा।
बालाओं का प्रिय स्वजन औ बन्धु है बालकों का,
ले जाते हैं सुरतरु कहाँ आप ऐसा हमारा।
बूढ़े के ये वचन सुनके नेत्र में नीर आया,
आँसू रोके परम मृदुता साथ अक्रूर बोले—
क्यों होते हैं दुखित इतने मानिये बात मेरी,
आ जावेंगे चिति दिवस में आप के लाल दोनों।
आई प्यारे निकट श्रम से एक वृद्धा-प्रवीणा,
हाथों से छू कमल-मुख को प्यार से ली बलायें।
पीछे बोली दुखित स्वर से तू कहीं जा न बेटा,
तेरी माता अहह कितनी बावली हो रही है।

दाँतों से हैं न तृण गहती हैं न बच्चे पिलाती,
हा! हा! मेरी सुरभि सब को आज क्या होगया है?'
देखो! देखो! सकल हरि की ओर ही आ रही हैं।
रोके भी हैं न रुक सकती बावली हो गई हैं।
यों ही बातें मधुर कहके फूट के ग्वाल रोया,
बोला मेरे कुँवर मथ को यों रुला के न जाओ।
रोता ही था जब वह तभी नन्द की सर्व गायें,
दौड़ी आयीं निकट हरि के पूँछ ऊँचा उठाये!
वे थी स्निग्धा विपुल विकला वारि था नेत्र लाता,
ऊँची आँखों कमल मुख थी देखती शंकिता हो।
काकातूआ महर-गृह के द्वार का भी दुखी था,
भूला जाता सकल स्वर था उन्मना हो रहा था।
चिल्लाता था अति विकल था औ यही बोलता था,
यों लोगों को व्यथित करके लाल जाते कहाँ हो?

पक्षी की औ सुरभि सब की देख ऐसी दशायें,
थोड़ी जो थी अहह! वह भी धीरता दूर भागी।
हा! हा! शब्दों सहित इतना फूट के लोग रोये,
हो जाती थी निरख जिसको भग्न छाती शिला की।
आवेगों के सहित बढ़ते देख सन्ताप-सिंधु,
धीरे धीरे ब्रज-नृपति से खिन्न अक्रूर बोले—

श्री मैथिलीशरण गुप्त

[जन्म संवत्—१९४३]

गुप्त जी झाँसी ज़िले के चिरगाँव नामक स्थान में रहते हैं। खड़ी बोली के कवियों में इनका बहुत ऊँचा स्थान है। आधुनिक कवियों में इनकी ही पुस्तकें जन-साधारण में सबसे अधिक प्रिय हैं। इनकी वर्णन-शैली स्पष्ट, साफ़ और सरस होती है। इनकी रचनाओं में राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई है। इनकी 'भारत-भारती' पुस्तक ने हज़ारों व्यक्तियों को देश का दीवाना बनाया है। ये 'कला कला के लिए' सिद्धांत के हिमायती नहीं हैं, बल्कि 'कला संसार कल्याण के लिए है' इस बात के मानने वाले हैं। इनकी रचनाओं से अंतःकरण में राष्ट्रीय भावनाएँ जाग्रत होती हैं, प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम उत्पन्न होता है, धार्मिक प्रवृत्ति विकसित होती है और आत्मिक शांति मिलती है।

इनकी भाषा शुद्ध, सरल और प्रसाद गुणयुक्त होती है। खड़ी बोली को साहित्यिक रूप देने वालों में गुप्त जी का विशेष हाथ है। इनके 'साकेत' नामक महाकाव्य पर हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने मङ्गलाप्रसाद पुरस्कार दिया था।

इन्होंने भारत-भारती, जयद्रथवध, किसान, गुरुकुल, प्लासी का युद्ध, रंग में भंग, बक-संहार, वन-वैभव, हिन्दू, शकुन्तला, विरहिणी-ब्रजांगना, साकेत, यशोधरा, द्वापर, मंगलघट, झंकार और सिद्धराज आदि अनेक काव्य ग्रंथ लिखे हैं।

आगे

[illegible] भय भागे,
[illegible], आगे बढ़, आगे!
[illegible]
[illegible] कहाँ तू?
[illegible]
[illegible] तू
[illegible] अतृप्ति निरंतर
[illegible] पद आगे
[illegible] बढ़, आगे!
[illegible]
[illegible] आली,
[illegible]
[illegible]
[illegible] हृदय ये
[illegible] आगे
[illegible], आगे!
[illegible]
[illegible] — [illegible] — [illegible],
[illegible]
[illegible]
[illegible] जायेगा
[illegible] आगे
[illegible], आगे!
[illegible]
[illegible],

तर, तारक बन झरे अमर नर,
छाई रहे अँधेरी ।
धर दृढ़ चरण, समृद्धि-वरण कर
किरण-तुल्य बढ़ आगे
आगे बढ़, आगे बढ़, आगे

एक फूल

मेरे आँगन का एक फूल !
सौभाग्य-भाव से मिला हुआ,
श्वासोच्छ्वासों से हिला हुआ,
संसार-विटपि में खिला हुआ,
झड़ पड़ा अचानक झूल-झूल !
मेरे आँगन का एक फूल !
ऊषा ने अपना उदय किया,
दीपक ने निज निर्वाण लिया,
मुझको मारुत ने जगा दिया,
देखा कि है गया हृदय-शूल,
मेरे आँगन का एक फूल !
वह रूप कहाँ, वह रंग कहाँ,
हिलने डुलने का ढंग कहाँ,
हो गया हरे ! रस-भग यहाँ,
उड़ गई गंध की हाय ! धूल,
मेरे आँगन का एक फूल !

क्षार-पारावार

छोड मर्यादा न अपनी, धीर, धीरज धार,
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !
रोक सकता है तुम्हें क्या मृत्तिका का तीर !
धाम अपने आपको तू, ओ अतल गंभीर !
व्यर्थ मटमैला न हो यह नील-निर्मल-नीर,
ताप-दुश्शासन-दलित भू द्रौपदी का चीर।
सुन, अमर्यादा प्रलय का खोल देगी द्वार !
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !
ये गले, पिघले हुए पर्वत-सदृश कल्लोल,
ग्रास करने जा रहे हैं कह किसे मुँह खोल !
ये सलिल-वातूल अपने तनिक तू ही तोल,
वेग वह वेला वराकी सह सकेगी, बोल !
धीर, अपने ही हिये पर झेल उनका भार,
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !
हाय, जल में भी जले जो, एक ऐसी आग,
जान ले तब प्राकृतिक है यह प्रबल उपराग।
उचित ही यह सफनना, यह हाँफना, ये झाग,
पर ठहर प्रभविष्णु, तू न सहिष्णुता को त्याग।
काट दे बंधन सहित सब कुछ न तेरी धार।
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार।
मथित है, हृतरत्न है, फिर भी नहीं तू दीन,
देव-कार्य-निमित्त था वह योग एक नवीन।
पूछ देख, अनन्त-रवि तेरे हृदय में लीन,
अचल-सा यह विश्व है तुच्छातितुच्छ विहीन।
तू बड़े से भी बड़ा, उस त्याग को स्वीकार
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार।

क्या अमृत के अर्थ है यह भीम तेरा नाद ?
तो गरल भी तो गया फिर कौन हर्ष-विषाद ?
जानते हैं अमर तेरे क्षार जल का स्वाद,
और जगती को जताते हैं सदा साह्लाद।
ओ मधुर-लावण्यमय तू छोड़ क्षोभ विकार
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !

विकल है यदि तू, दिगंगत देख मंजु-मयंक,
तो निरख, उसको मिला है अचल-ऊँचा अंक।
इष्ट सबका एक सा वह, राव हो या रंक,
वह यहीं कृतकृत्य है, रह तू यहाँ निश्शंक।
देखकर सद्गति किसी की उचित क्या चीत्कार,
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !

रत्न हमीं हम में यहाँ बस, ठीक है यह बात,
किंतु उनसे एक सीमा सौम्य, तेरा गात।
अखिल में अनुभूति अपनी मान तुमको तात,
सरस है सारी रसा पाकर सलिल-संपात।
मिल हुआ विष भी सुधा में दूर एकाकार,
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !

वस्तुतः वह क्षोभ तेरा यह अतुल उल्लास !
हाय, उपजाती यहीं की मौज भी है त्रास।
सद्म तेजोमय किसे रवि का अखंड विकास ?
और भोलानाथ हर का हास-तांडव रास ?
ध्वंस के ही साथ क्या निर्माण का व्यवहार ?
क्षुब्ध-पारावार, मेरे क्षार-पारावार !

शांत, ओ गंभीर, ओ उत्ताल जल-जंजाल,
व्योम तेरी ऊर्मि में, आवर्त में पाताल।

बढ़ता हूँ निज नवगति ओढ़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !
हरियाली है मेरे संग,
मेरे कण-कण में भी रंग,
फिर भी देख जगत के ढंग,
मुड़ता हूँ मैं भृकुटि मरोड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !
घर कर नव कलरव निष्पाप,
हर कर संतापों का ताप,
अपना मार्ग बनाकर आप,
जाऊँ सब कुछ पीछे छोड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !
है सब का स्वागत-सम्मान,
करे यहाँ कोई रस-पान,
मेरा जीवन गतिमय गान,
काल ! तुझी से मेरी होड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !

मेरा देश

बलिहारी तेरा वरवेश,
मेरे भारत ! मेरे देश
बाहर मुकुट विभूषित भाल,
भीतर जटा-जूट का जाल ।
ऊपर नभ, नीचे पाताल,
और बीच में तू प्रणपाल ।
बंधन में भी मुक्त निवेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !

कभी मुरज-मय वीणावाद,
कभी स्वरों से साम-निनाद ।
कभी गगनचुम्बी प्रासाद,
कभी कुटी में ही आह्लाद ।
नहीं कहीं भी भय का लेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !
है तेरी कृति में विक्रांति,
भरी प्रकृति में अविचल शांति।
फटक नहीं सकती है भ्रांति,
आँखों में है अक्षय कांति,
आत्मा में है अज अखिलेश,
मेरे भारत ! मेरे देश ।
सरस्वती का तुझ में वास,
लक्ष्मी का भी विपुल-विलास ।
प्रिया प्रकृति का पूर्ण विकास,
फिर भी है तू आप उदास ।
हे गिरीश, हे अम्बरकेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !
मस्तक में रखता है ज्ञान,
भक्ति-पूर्ण मानस में ध्यान ।
करके तू प्रभु कर्म विधान,
है सत् चित् आनन्द निधान ।
मेटे तूने तीनों क्लेश,
मेरे भारत ! मेरे देश !
इधर विविध लीला विस्तार,
उधर गुणों का भी परिहार ।

जिधर देखिए पूर्णाकार,
किधर कहें हम तेरा द्वार ?
　　　　हृदय कहीं से करे प्रवेश,
　　　　मेरे भारत ! मेरे देश !
तन से सब भोगों का भोग,
मन में महा अलौकिक योग।
पहले संभव का संयोग,
स्वयं त्याग का फिर उद्योग।
　　　　अद्भुत है तेरा उद्देश,
　　　　मेरे भारत ! मेरे देश !
बन कर तू चिर साधन धाम,
हुआ स्वयं ही आत्माराम।
लिया नहीं तब तक विश्राम—
जब तक पूरा किया न काम।
　　　　दिये तुम्ही ने सब उपदेश,
　　　　मेरे भारत ! मेरे देश !

उर्मिला की विरह-वेदना

(१)

वेदने, तू भी भली बनी।
पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।
नई किरण छोड़ी है तूने, तू वह हीर-कनी,
सजग रहूँ मैं, साल हृदय में, ओ प्रिय-विशिख-अनी!
ठंढी होगी देह न मेरी, रहे दृगम्बु-सनी,
तू ही उसे उष्ण रक्खेगी मेरी तपन-मनी!

अब विश्राम करें रवि-चंद्र;
फूटें नये अंकुर निस्तंद्र;
धीर, सुनाओ निज मृदुमंद्र;
कोई नई कहानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।
बरस घटा, बरसूँ मैं संग;
सरसें अवनी के सब अंग;
मिले मुझे भी कभी उमंग,
सब के साथ सयानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।

(४)

काली काली कोयल बोली—
होली—होली—होली !
हँसकर लाल लाल होठों पर हरियाली हिल डोली,
फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की पीली पीली चोली।
होली—होली—होली !
अलस कमलिनी ने कलरव सुन उन्मद अँखियाँ खोली,
मल दी ऊषा ने अंबर में दिन के मुख पर रोली।
होली—होली—होली !
रागी फूलों ने पराग से भर ली अपनी झोली,
और ओस ने केसर उनके स्फुट-संपुट में घोली।
होली—होली—होली !
ऋतु ने रवि-शशि के पलड़ों पर तुल्य प्रकृति निज तोली,
सिहर उठी सहसा क्यों मेरी भुवन-भावना भोली ?
होली—होली—होली !
गूँज उठी खिलती कलियों पर उड़ अलियों की टोली,
प्रिय की श्वास-सुरभि दक्षिण से आती है अनमोली।
होली—होली—होली !

स्वतंत्र देश के नवयुवक

(१)

शक्ति-प्रदर्शन को जब कोई,
गर्वित शत्रु प्रबल दल सजकर।
या बहु वैभव देख लोभ-वश,
कोई निठुर दस्यु सीमा पर।
आकर धन जन पर पड़ता है,
निर्भय रण-दुंदुभी बजाकर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर॥

(२)

क्रुद्ध सिंह सम निकल प्रकट कर,
अतुलित भुजबल विरल पराक्रम।
युद्ध-भूमि में वे बैरी का,
दर्प दलन कर लेते हैं दम।
या स्वतंत्रता की वेदी पर,
कर देते हैं प्राण निछावर।
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर।।२।।

(३)

या स्वदेश ही में जब कोई,
स्वेच्छाचारी निडर निरंकुश।
शासक राज-शक्ति से रक्षित,
लंपट लोलुप क्रूर कापुरुष।
निज कर्तव्य-विरुद्ध प्रजा पर,
करता है अन्याय घोरतर।

तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर!

(४)

व्यथित प्रजा के बीच वास कर,
निर्भय भावों का प्रचार कर,
सत्य-शक्ति के अवलंबन से,
शासन में निश्चित सुधार कर,
वे होते हैं हृदय-मंच पर,
या तो कारागृह के भीतर,
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर!

(५)

आता है जब फैल देश में,
कोई विषम रोग संक्रामक,
अथवा ऊपर आ पड़ता है,
जब भीषण दुर्भिक्ष अचानक,
जब जनता पुकार उठती है,
त्राहि त्राहि स्वर से अति कातर,
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर!

(६)

वे प्राणों का मोह छोड़कर, ·
निशि-दिन काम हीन मन सह कर,
धर्म-भाव से प्रेरित होकर,
भूखा सोकर भूखे रह कर,

परम सुहृद बनकर समाज की,
सेवा में रहते हैं तत्पर,
तब नवयुवक स्वतंत्र देश के,
क्या बैठे रहते हैं घर पर!

भूख की ज्वाला

(१)

धधक रही सब ओर भूख की ज्वाला है घर घर में।
मांस नहीं है निरी साँस है शेष अस्थि-पंजर में।
अन्न नहीं है, वस्त्र नहीं है, रहने का न ठिकाना।
कोई नहीं किसी का साथी अपना और बिगाना।

(२)

लाखों नहीं, करोड़ों ऐसे हैं मनुष्य दुख पाते।
जीवन भर जो जठरानल में जल-जल कर मर जाते।
हाय हाय कर लोग साँझ को निराहार सो जाते।
एक बार भी रात-दिवस में पेट नहीं भर पाते।

(३)

खाते हैं गम, और आँसुओं ही से प्यास बुझाते।
लेकर आयु विविध रोगों की हैं दिन-रात बिताते।
फटे-पुराने चिथड़ों ही से ढके किसी विध तन हैं।
कैसे सिये, सुई तागे से भी नितांत निर्धन हैं।

(४)

बड़े सबेरे से संध्या तक करके कठिन मजूरी।
सुख के बदले में पाते हैं आयु मजूर अधूरी।

इस जीवन के घन वन में

[illegible] खड़ा था

इस जीवन के घन वन में।

[illegible] था

[illegible] था

[illegible] था,

[illegible] था पथ निर्जन में,

इस जीवन के घन वन में।

[illegible] में

[illegible] में

[illegible] बैठा

[illegible] कन-कन में।

इस जीवन के घन वन में।

श्रीयुत मुंशी अजमेरी

(जन्म संवत् १९३८—मृत्यु संवत् १९९५)

स्वर्गीय मुंशी अजमेरी यद्यपि बहुत प्रतिभाशाली कवि थे, फिर भी हिंदी जगत् उनके वास्तविक रूप को नहीं जान पाया। बाबू मैथिलीशरण गुप्त जैसे महान कवि के साथ जीवनभर रहकर मुंशी जी काव्य-साधना करते रहे और प्रकाशन से सदा बचते रहे। फिर भी जो कुछ मुंशीजी के नाम से प्रकाशित हुआ है वह उन्हें साहित्य-जगत् में ऊँचा स्थान दिलाने के लिए पर्याप्त है। भाषा पर पूर्ण अधिकार, प्रवाह और प्रसाद गुण उनकी रचनाओं के विशेष गुण हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'चित्रांगदा' का जो पद्य-बद्ध अनुवाद मुंशी जी ने किया है वह बहुत सुंदर हुआ है। उन्होंने पत्रों का कंठा, शाही कुँगड़ा, हेमलाकसा, गोकुलसिंह, मधुकरशाह, रामकथा, मल्लयुद्ध मल्लयुद्ध-प्रचार आदि पुस्तकें तथा फुटकर रचनाएँ भी लिखी हैं। उनका हाल ही में स्वर्गवास हो गया। जाति के मुसलमान होते हुए भी वे संस्कृति से हिंदू जान पड़ते थे।

[illegible]किल, बोलो तो !

[illegible] [illegible] जाती हो—कोकिल, बोलो तो!
[illegible] [illegible] है—कोकिल, बोलो तो!
[illegible] [illegible] के घेरे में,
[illegible] [illegible] के डेरे में,
[illegible] [illegible] खाना,
[illegible] [illegible] रह जाना,
[illegible] [illegible] कड़ा पहरा है,
[illegible] है, [illegible] का प्रभाव गहरा है,
[illegible] [illegible] भी काली:
[illegible] [illegible] क्यों आली ?
[illegible] [illegible] जाती सी—कोकिल, बोलो तो!
[illegible] [illegible] सी—कोकिल, बोलो तो!

[illegible] [illegible] आमों का,
[illegible] [illegible] अभ्यासों का,
[illegible] [illegible] दरवाजों का.

या वायु-विटप वल्लरी चीर हठ ठाने,
दीवार चीरकर अपना स्वर अजमाने,
या लेने आई मम आँखों का पानी,
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी !
खा अंधकार करते वे जग-रखवाली,
क्या उनकी आभा तुझे न भाई आली ?
तुम रवि किरणों से खेल जगत को रोज जगाने वाली—
कोकिल, बोलो तो !
क्यों अर्धरात्रि में विश्व जगाने आई हो मतवाली—
कोकिल, बोलो तो !

दूबों के आँसू धोती, रवि-किरणों पर,
मोती बिखराते विन्ध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्माण्ड कँपाते उस उद्दंड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा,
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा,
तब सर्वनाश करती क्यों हो ? तुम जाने या बे-जाने—
कोकिल, बोलो तो !
क्यों तमोरात्रि पर विवश हुई लिखने मधुरीली तानें—
कोकिल, बोलो तो !

क्या देख न सकती जंजीरों का गहना ?
हथकड़ियाँ क्यों ? यह पारतंत्र्य का गहना !
गिट्टी पर ! अँगुलियों ने लिक्खे गान !
कोल्हू का चरखा चूँ !—जीवन की तान।
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हूँ दुर्दिन अकड़ का कूँआ।

देख विषमता तेरी मेरी,
बजा रही तिस पर रणभेरी!
इस हुंकृति पर अपनी कृति से, और कहो क्या कर दूँ ?—
कोकिल बोलो तो !
मोहन के व्रत पर, प्राणों का आसव किस में भर दूँ—
कोकिल, बोलो तो

फिर कुहू—अरे क्या बंद न होगा गाना,
इस अंधकार में मधुराई दफनाना!
नभ सीख चुका है कमजोरों को खाना,
क्यों बना रहा अपने को उसका दाना!
तिस पर, करुणा-गाहक बंदी सोते हैं,
स्वप्नों में स्मृतियाँ श्वासों में धोते हैं।
सीकचे-कड़ियाँ तोड़ूँ की तालों से,
क्या कर दूँगी! बोलो निर्दय तालों से,
क्या तुम जाओगी दहन तुम्हारा ज्वालाओं के द्वारा—
कोकिल, बोलो तो !
और प्राण से हो जावेगा स्वतन्त्र-सुभग जग सारा—
कोकिल, बोलो तो !

बाबू जयशंकर प्रसाद

(जन्म संवत् १९४६ । मृत्यु संवत् १९९४)

आप काशी के प्रतिष्ठित दानवीर, रईस तथा संस्कृत-विद्या के प्रेमी बाबू देवी प्रसाद सुँघनी साहू के सुपुत्र थे। आपकी बचपन से ही साहित्य की ओर रुचि थी। आप छायावादी कविता के प्रवर्तक माने जाते हैं। भिन्न तुकांत रचना भी सबसे पहले आपने ही लिखी थी।

काव्य के क्षेत्र में प्रसाद जी का हिंदी के सभी आधुनिक कवियों में अपना और प्रतिष्ठित स्थान है। आपकी रचनाओं में नवीनता के साथ-साथ ही प्राचीनता की महिमा भी है। बुद्ध भगवान [illegible] का आप के जीवन और साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा है और आपकी रचनाओं में प्राचीन संस्कृति का बहुत आकर्षक [illegible] हुआ है। करुणा और [illegible] आपकी [illegible] के विशेष गुण हैं [illegible] मधुमयी [illegible] है। [illegible] आपकी कई रचनाएँ [illegible] है, [illegible] आपकी [illegible] के [illegible] आन्दोलन के और कुछ [illegible] थे, [illegible] आपकी [illegible] और [illegible] है [illegible] आपकी कविताओं में बहुत [illegible] है।

प्रारंभ में आपने भी कुछ ब्रजभाषा की तथा कुछ प्रारंभिक काल के खड़ी बोली के कवियों की कविताओं जैसी रचनाएँ लिखी थीं, पर धीरे-धीरे आपकी शैली, भाव और भाषा ने पलटा खाया और हिन्दी-काव्य को आपने नए ही प्रकार के फूलों से सजा दिया।

आपके 'कामायनी' नामक महाकाव्य पर हिंदी-साहित्य सम्मेलन ने आपकी मृत्यु के अनंतर मंगला-प्रसाद पुरस्कार दिया है।

आपके काव्य-ग्रंथों में 'महाराणा का महत्त्व', 'प्रेम-पथिक', 'कानन-कुसुम', 'लहर', 'झरना', 'आँसू' और 'कामायनी' आदि प्रसिद्ध हैं। कवि के अतिरिक्त आप सफल नाटक-कार, कहानी-लेखक और उपन्यासकार भी थे। केवल ४० वर्ष की आयु में ही आपकी असामयिक मृत्यु हो गई।

तेरा विषाद द्रव तरल-तरल
मूर्छित न रहे ज्यों पिये गरल,
सुख-लहर उठा री सरल-सरल
लघु-लघु सुंदर-सुंदर अविरल,
—तू हँस जीवन की सुघराई।
हँस, झिलमिल हों ले तारागन,
हँस, खिलें कुंज के सकल सुमन,
हँस, बिखरें मधु-मरंद के कन,
बन कर संसृति के नव श्रम कन;
—सब कह दें 'वह राका आई!'
हँस लें भय शोक प्रेम या रण,
हँस ले काला पट ओढ़ मरण,
हँस लें जीवन के लघु लघु क्षण,
देकर निज चुंबन के मधुकण,
नाविक अतीत को उतराई!

अरी वरुणा की शांत कछार!

अरी वरुणा की शांत कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!
सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुंज!
जगत नश्वरता के लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुंज!
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार।
स्वर्ग की वसुधा से शुचि संधि, गूँजता था जिससे संसार!
अरी वरुणा की शांत कछार!
तपस्वी के विराग की प्यार!

आँसू

इस करुणा-कलित हृदय में क्यों विकल रागिनी बजती!
क्यों हाहाकार स्वरों में वेदना असीम गरजती?
क्यों छलक रहा दुख मेरा ऊषा की मृदु पलकों में?
हाँ! उलझ रहा सुख मेरा संध्या की घन अलकों में।
बस गई एक बस्ती है स्मृतियों की इसी हृदय में;
नक्षत्र-लोक फैला है जैसे इस नील निलय में।

× × × ×

चातक की चकित पुकारें, श्यामा-ध्वनि सरल रसीली;
मेरी करुणार्द्र-कथा की टुकड़ी आँसू से गीली।
वाडव-ज्वाला सोती थी इस प्रेम-सिंधु के तल में,
प्यासी मछली-सी आँखें थीं विकल रूप के जल में।
नीरव मुरली, कलरव चुप, अलि-कुल थे बंद नलिन में,
कालिंदी बही प्रणय की इस तममय हृदय-पुलिन में।
छिल-छिलकर छाले फोड़े मल-मल कर मृदुल चरण से
धुल-धुल कर वह रह जाते आँसू करुणा के कण से।

याचना

१

जब प्रलय का हो समय ज्वालामुखी निज मुख खोल दे,
सागर उमड़ता आ रहा हो शक्ति-साहस बोल दे।
ग्रहगण सभी हों केन्द्र-च्युत लड़कर परस्पर भग्न हों,
उस समय भी हम हे, प्रभो! तव पद्म-पद में लग्न हों॥

२

जब शैल के सब शृंग विद्युद्-वृन्द के आघात से,
हों गिर रहे भीषण मचाते विश्व में व्याघात से।
जब घिर रहे हों प्रलय-घन अवकाश-गत आकाश में,
तब भी प्रभो ! यह मन खिंचे तव प्रेम-धारा-पाश में।

३

जब क्रूर षड्-रिपु के कुचक्रों में पड़े यह मन कभी,
जब दुःख की ज्वालावली हो भस्म करती सुख सभी।
जब हों कृतघ्नों के कुटिल आघात विद्युत्पात से,
जब स्वार्थी दुख दे रहे अपने मलिन छलछात से॥

४

जब छोड़ कर प्रेमी तथा सन्मित्र सब संसार में,
इस घाव पर छिड़कें नमक हो दुख खड़ा आकार में।
करुणानिधे ! हों दुःख-सागर में कि हम आनंद में।
मन-मधुप हो विश्रम्न-प्रमुदित तव चरण-अरविंद में॥

५

हम हों सुमन की सेज पर या कंटकों की आड़ में,
पर प्राणधन ! तुम छिपे रहना, इस हृदय की आड़ में।
हम हों कहीं, इस लोक में, उस लोक में, भूलोक में,
तव प्रेम-पथ में ही चलें, हे नाथ ! तव आलोक में॥

तत्वों और भावनाओं से भरे हुए हैं। इनके गीतों का एक संग्रह 'गीतिका' के नाम से प्रकाशित हुआ है। संगीत-शास्त्र में भी वे प्रवीण हैं।

इन्होंने अनामिका, परिमल, गीतिका और तुलसीदास नामक काव्य-ग्रंथ लिखे हैं। अप्सरा, अलका, निरुपमा और प्रभावती नामक उपन्यास और उषा नामक नाटिका तथा इनके अतिरिक्त और विविध विषय की पुस्तकें लिखी हैं।

इसमें संदेह नहीं कि निराला जी हिंदी जगत् में आँधी की भाँति आए और कविता की प्राचीन परिपाटियों को तोड़ने-फोड़ने में निरंतर लगे रहे। इनकी कविताएँ इनके संघर्षमय जीवन के चित्र हैं, उनमें हृदय की सूक्ष्म और वेदना की भावनाओं की अनुभूति है।

बादल राग

ऐ निर्बंध !
अंध-तम-अगम-अनर्गल—बादल !
ऐ स्वच्छंद !—
मंद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल !
ऐ उद्दाम !
अपार कामनाओं के प्राण !
बाधा-रहित-विराट !
ऐ विप्लव के प्लावन !
सावन घोर गगन के
ऐ सम्राट !
ऐ अटूट पर छूट टूट पड़ने वाले—उन्माद !
विश्व-विभव को लूट लूट लड़ने वाले—अपवाद !
श्री बिखेर, मुख-फेर कली के निष्ठुर पीड़न !
छिन्न-भिन्न कर पत्र-पुष्प-पादप-वन-उपवन,
वज्रघोष से ऐ प्रचंड !
आतंक जमाने वाले !
कंपित जंगम,—नीड़ विहंगम
ऐ न व्यथा पाने वाले !

नभ के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर !

× × × ×

झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर !
राग-अमर ! अम्बर में भर निज रोर !

झर झरझर निर्झर-गिरि-सर में
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागर में;
सरित—तड़ित-गति—चकित पवन में,
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन में, रव-घोर-कठोर—
राग-अमर! अम्बर में भर निज रोर!
अरे वर्ष के हर्ष!
बरस तू बरस-बरस रसधार!
पार ले चल तू मुझको,
बहा, दिखा मुझको भी निज
गर्जन-भैरव संसार!

उथल-पुथल हृदय—
मचा हलचल—
चल रे चल,—
मेरे पागल बादल!
धँसता दलदल,
हँसता है नद खल्‌खल्‌,
बहता, कहता कुलकुल कलकल कलकल
देख, देख नाचता हृदय
बहने को महा विकल—बेकल,
इस मरोर से—इसी शोर से—
सघन घोर गुरु गहन रोर से
मुझे—गगन का दिखा सघन वह छोर!
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर!

तुम और मैं

तुम तुंग हिमालय-शृंग,
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता ।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी कविता ॥
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरापान घन-अन्धकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रान्ति,
तुम दिन कर के खर किरण-जाल,
मैं सरसिज की मुसकान ।
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान ॥
तुम योग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि ।
तुम मृदु मानस के भाव,
और मैं मनोरंजिनी भाषा ।
तुम नन्दन-वन-घन विटप,
और मैं सुख-शीतल-तल शाखा ॥
तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया ।
तुम प्रेममयी के कण्ठहार,
मैं वेणी काल-नागिनी ।
तुम कर-पल्लव-झंकृत सितार,
मैं व्याकुल विरह-रागिनी ॥

वृत्ति

देख चुका जो-जो आए थे
चले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब,
भले गए !
क्षण-भर की भाषा में
नव-नव अभिलाषा में,
उगते पल्लव-से कोमल शाखा में,
आए थे जो निष्ठुर कर से
मले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए !
चिंताएँ, बाधाएँ;
आती ही हैं, आएँ;
अन्ध हृदय है, बन्धन निर्दय लाएँ,
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे
छले गए !
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए !

क्या गाऊँ ?

क्या गाऊँ ?—माँ ! क्या गाऊँ ?
गूँज रही हैं जहाँ राग-रागिनियाँ
गाती हैं किन्नरियाँ—कितनी परियाँ,
कितनी पंचदशी कामिनियाँ,

वहाँ एक यह लेकर वीणा दीन,
तंत्री क्षीण—नहीं जिसमें कोई झंकार नवीन,
रुद्ध कंठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ ?
माँ !—क्या गाऊँ ?

छाया है मंदिर में तेरे यह कितना अनुराग !
चढ़ते हैं चरणों पर कितने फूल
मृदु-दल सरस-पराग;
गंध-मोद-मद पीकर मंद समीर
शिथिल चरण जब कभी बढ़ाती आती,
सजे हुए बजते उसके अधीर नूपुर-मंजीर !
वहाँ एक निर्गंध कुसुम उपहार,
नहीं कहीं जिसके पराग-संचार सुरभि-संसार ॥
कैसे भला चढ़ाऊँ ?
माँ ! क्या गाऊँ ?

मेरे प्राणों में आओ

मेरे प्राणों में आओ !
शत शत, शिथिल, भावनाओं के
उर के तार सजा जाओ !
गाने दो प्रिय, मुझे भूल कर
अपनापन—अपार जग सुंदर,
खुली करुण उर की सीपी पर
स्वाती-जल नित बरसाओ !
मेरी मुक्ताएँ प्रकाश में
चमकें अपने सहज हास में,
इनके अचपल भ्रू-विलास में
लाज-रंग-रस सरसाओ !

मेरे स्वर की अनल-शिखा में
जला सकल जग जीर्ण दिशा में
हे अरूप, नव-रूप-विभा के
चिर स्वरूप पा के जाओ!

तेरे चरणों पर

नर-जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ,
मेरे श्रम-संचित सब फल।
जीवन के पथ पर चढ़कर,
सदा मृत्यु-पथ पर बढ़कर,
महाकाल के खरतर शर सह
सकूँ मुझे तू कर दृढ़तर;
जागे मेरे उर में तेरी
मूर्ति अश्रुजल-धौत विमल,
दृग-जल से पा बल, बलि कर दूँ
जननि, जन्म-श्रम-संचित फल!
बाधाएँ आयें तन पर,
देखूँ तुझे, नयन-मन भर,
मुझे देख तू सजल दृगों से,
अपलक, उर के शतदल पर,
क्लेदयुक्त अपना तन दूँगा,
मुक्त करूँगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि,
सकल श्रेय—श्रम-संचित फल!

आवाहन

एक बार बस और नाच तू श्यामा !
सामान सभी तैयार,
कितने ही हैं असुर, चाहिए कितने तुझको हार ?
कर-मेखला मुंड-मालाओं से बन मन-अभिरामा—
एक बार बस और नाच तू श्यामा !
भैरवी भेरी तेरी झंझा
तभी बजेगी मृत्यु लड़ाएगी जब तुझ से पंजा,
लेगी खड्ग और तू खप्पर,
उसमें रुधिर भरूँगा माँ
मैं अपनी अंजलि भर भर;
उँगली के पोरों में दिन गिनता ही जाऊँ क्या माँ—
एक बार बस और नाच तू श्यामा !
अट्टहास-उल्लास-नृत्य का होगा जब आनंद,
विश्व की इस वीणा के टूटेंगे सब तार,
बंद हो जाएँगे ये सारे कोमल छंद,
सिंधु-राग का होगा तब आलाप,—
उत्ताल-तरंग-भंग में होंगे
माँ, मृदंग के सुस्वर क्रिया-कलाप,
और देखूँगा देते ताल
कर-तल-पल्लव-दल से निर्जन वन से सभी तमाल;
निर्झर के झर झर स्वर में तू सरिगम मुझे सुना माँ
एक बार बस और नाच तू श्यामा !

नौका-विहार

(कालाकांकर में गंगा की धारा में)
शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल!
अपलक अनंत, नीरव भू-तल!
सैकत शय्या पर दुग्ध धवल तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रांत, क्लांत निश्चल!
तापस बाला गंगा निर्मल शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर सिहर, लहराता तार तरल सुंदर
चंचल अंचल सा नीलांबर।
साड़ी की सिकुड़न सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी हैं वर्तुल, मृदुल लहर।
चाँदनी रात का प्रथम प्रहर,
हम चले नाव लेकर सत्वर।
सिकता की सस्मित-सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें चढ़ीं, उठा लंगर।
मृदु मंद, मंद, मंथर, मंथर, लघु तरणि, हंसिनी सी सुंदर
तिर रही, खोल पालों के पर।
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर, बिंबित हो रजत पुलिन निर्भर
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।
कालाकाँकर का राज-भवन सोया जल में निश्चिंत, प्रमन
पलकों में वैभव-स्वप्न सघन।
नौका से उठतीं जल हिलोर,
हिल पड़ते नभ के ओर छोर।

निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण!
विपुल-वासना-विकच विश्व का मानस शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल-कृमि से घुस पल पल;
तुम्हीं स्वेद-सिंचित संसृति के स्वर्ण शस्य दल
दलमल देते वर्षोपल बन, वांछित कृषिफल!
अये! सतत ध्वनि स्पंदित जगती का दिङ्मंडल!
नैश गगन-सा सकल,
तुम्हारा ही समाधि-स्थल।

(४)

काल का अकरुण-भृकुटि विलास
तुम्हारा ही परिहास;
विश्व का अश्रु-पूर्ण इतिहास!
तुम्हारा ही इतिहास!
एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयकर
समर छेड़ देता निसर्ग संसृति में निर्भर!
भूमि चूम जाते अभ्र ध्वज सौध, शृंगवर,
नष्ट भ्रष्ट साम्राज्य—भूति के मेघाडंबर।
अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भूकंपन,
गिर गिर पड़ते भीत पक्षि पोतों से उडुगन!
आलोड़ित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत शत फन,
मुग्ध भुजंगम-सा इंगित पर करता नर्तन!
दिक्-पिंजर में बद्ध, गजाधिप-सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु गर्जन!

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए।
माता की छाती का अमृत-
मय पय काल-कूट हो जाए,
आँखों का पानी सूखे,
वे शोणित की घूँटें हो जाएँ,
एक ओर कायरता काँपे,
गतानुगति विगलित हो जाए,
अन्धे मूढ़ विचारों की वह,
अचल शिला विचलित होजाए,
और दूसरी ओर कँपा देने
वाला गर्जन उठ धाए,
अन्तरिक्ष में एक उसी नाशक
तर्जन की ध्वनि मँडराए,
कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाए!
नियम और उपनियमों के ये
बंधन टूक-टूक हो जाएँ,
विश्वंभर की पोषक वीणा
के सब तार मूक हो जाएँ,
शांति-दंड टूटे उस महा-
रुद्र का सिंहासन थर्राए,
उसकी श्वासोच्छ्वास-दाहिका
विश्व के प्रांगण में घहराए,
नाश! नाश!! हा महानाश!!! की
प्रलयंकरी आँख खुल जाए,

"दिल को मसल मसल मैं मेंहदी
रचना आया हूँ, यह देखो,
एक-एक अंगुलि-परिचालन
में नाशक ताडव को पेखो!

विश्वमूर्ति! हट जाओ !! मम
भीम प्रहार सहे न सहेगा,
टुकड़े टुकड़े होजाओगी,
नाशमात्र अवशेष रहेगा;

आज देख आया हूँ—जीवन
के सब राज़ समझ आया हूँ;
भ्रू-विलास में महानाश के
पोषक सूत्र परख आया हूँ;

जीवन-गीत भुला दो—कंठ
मिला दो मृत्यु-गीत के स्वर से,
रुद्र गीत की क्रुद्ध तान है
निकली मेरे अन्तर-तर से।

रुन-झुन-झुन

रुन-झुन-झुन रुनुन झुनुन रुनुन झुनुन

मेरे साजन की पैंजनियाँ
बजक रही मेरी आँगनियाँ;
चौंकत आकर धीरे-धीरे
सुन ले तू मेरी सजनियाँ!

न जानूँ कैसे पाया है यह धन आली पड़ोसिन सुन
रुन-झुन-झुन रुनुन झुनुन रुनुन झुनुन
पैंजनियों की झनन-झनन में रुन-झुन में रहती सकुचिन
हाँ रोती-सी यह आती है झनन-झनन करता सकुचिन

[illegible] में वह होते
[illegible] मातृभाषा को ।
[illegible] तालियों से बजता रुन झुन।
[illegible] रुनुन कनुन झुनुन॥
[illegible] में खिला रही हूँ मैं,
[illegible] को पिला रही हूँ मैं।
[illegible] की धारा
[illegible] बही दुधारा;
[illegible] करती हूँ
[illegible] दुलारा।
[illegible] मधुर पुरातन धुन।
[illegible] कनुन झुनुन॥

[illegible] का सुख

[illegible] कहाँ तुम्हारा प्यार?
[illegible] सखी सुकुमार?
[illegible] विहँस हुलसती बाल,
[illegible] मधु-कलिका विशाल,
[illegible] में आई आज,
[illegible] समाज।
[illegible] विविध आकार,
[illegible];
[illegible],
[illegible],
[illegible] का विमल हृदय,
[illegible]।

चढ़ चल, चढ़ चल, थक मत रे तू बलिदानों के पुंज,
देख कहीं न लुभावे तुझको यह जीवन की कुंज,
मधुर मृत्यु का नृत्य देख तू देने लग जा ताल,
अपना सीस पिरोकर कर दे पूरी माँ की माल,
है जीवन अनित्य, कट जाने दे तू मोहक बंध,
कर दे पूरा आज मरण का तू अपना सुप्रबंध।

विश्व-रूप

मत मर्म-व्यथा छूने, विद्युत् बन, आओ;
बन निविड़ श्याम-घन प्राणों में छा जाओ!
किरणों की उलझन चाणिक न बनो सवेरा;
बन निशा डुबा दो छवि में जीवन मेरा।
अस्थिर जीवण-कण बन न नयन ललचाओ,
बन शांत मरण-सागर असीम लहराओ!
जो टूट पड़े चण में विनाश इंगित पर,
वह तारक बन मत ध्यान भंग कर जाओ;
जिसकी अंचल-छाया में सोवे त्रिभुवन,
वह अंतहीन आकाश नील बन आओ।
फिर उसी रूप से नयनों को न भुलाओ;
अभिनव अपूर्व छवि जीवन को दिखलाओ!
दर्शन-सुख की परिभाषा नई बनाओ,
लघु दृग-तारों में नहीं हृदय में आओ!
वह विश्वरूप बन आओ, मेरे, सुंदर!
जो रेखाओं का बंदी बने न पट पर;
जिसको भर रखने को तप कर जीवन भर
उर बने एक दिन अंतहीन नीलांबर
अनुभव को दृग तक ही सीमित न बनाओ;
छवि से जीवन के अणु अणु को भर जाओ
हर झाँकी में विस्तृततर बनकर आओ;
जग के प्राणों की प्रतिचण परिधि बढ़ाओ!

धीरे-धीरे युग-परिवर्तन
की आहट आती जाती है;
गहन घटा-सी क्षितिज-पटल पर
घिर-घिर कर छाती जाती है ।

क्या अगले तूफानों में तू
अपना भार सँभाल सकेगा?
एकाकी असहाय नाश की
वेला कब तक टाल सकेगा?

तेरे सिंहासन के नीचे
कुचले जाने वाले जागे !
वे भी बढ़ना चाह रहे हैं
अब तो जीवन-पथ पर आगे !

उनके मुक्ति-गीत के स्वर में
अपना हृदय मिलाएगा तू—
या उत्कट युग के प्रवाह को
रोक स्वयं बह जाएगा तू!

कुञ्ज का कुञ्ज

घर-घर गाने चली भक्ति जब
गिरि की दृढ़ता का गुण-गान,
उसी रात, डर चीर, प्रेम की
गंगा फूट पड़ी गतिमान;

गायक कुँभला जाता है,
हाय, युगों के संचल! क्यों तू
पल भर में बह जाता है।

केवल तुम्हीं देख पाते हो उर की आँखों से उर में,
स्वर की नभ-चुंबी डोरों से उतर समुद अंतःपुर में।
कितनी सुरभि, सुधा-मधु कितना, कितनी छवि, कितना संगीत,
कितना सुख, कितनी मादकता, कितना स्नेह, प्रकाश, प्रतीति,
इन छोटे-से प्राणों में 'प्रिय' एक साथ भर जाते हैं।
तरु के तले बटोही केवल एक गान सुन पाते हैं।
त्रिभुवन का आलोक तुम्हारे अंतर में भर जाता है।
अतः बाहरी जग में तुमको तिमिर शेष रह जाता है।

२

मूक चित्रकार

उषा, तारिका, इन्द्रधनुष में, नीरव लहराते जल में,
कहता है कुछ चन्द्र-किरण में, कुछ नभ में, कुछ बादल में।
फूलों के रंगीन मौन में मंद स्मित भाषा बन कर,
उर के अनुभव-सा धीरे से खिलता है जो चिर-सुंदर।
उसी भुवन नायक की भाषा—मौन, तुम्हारी है भाषा,
तुम रंगीन विश्व के राजा नीरव-जगती की आशा।

× × × ×

नयनों के नंदन-वन में, हे चित्रकार, भरमा कर,
रख लेते हो त्रिभुवन की भाषा को मूक बनाकर।

× × × ×

जहाँ नहीं झंकार स्वरों की शब्दों का विस्तार नहीं।
रंगों का संसार नहीं रेखाओं का आकार नहीं।
वहीं इन्हीं नयनों में छवि बन हो उठता है व्यक्त अजान,
यह युग-युग का मूक हृदय, ये जन्म जन्म के नीरव प्राण।

× × × ×

पदक्षेप में अगणित त्रुटियाँ गिनते रहते हैं रज-कण,
पर तुम चलते ही जाते हो पथ पर पागल से प्रतिक्षण।
जग के कलुषित कोलाहल में सदा सुरक्षित है 'सुंदर',
श्रवणों पर पट डाल, हृदय में छिपा रखा प्रियतम का स्वर
वही अमर स्वर गूँज रहा है आदि काल से प्राणों में,
अतः 'शून्य' अनुभव करते हो मर्त्य जगत् के गानों में।

अनुरोध

जीवन-पथ की अमिट अमावस
बने निमिष में स्वर्ग-समान,
बिखरा दो उदार अधरों में
किरणों की उज्ज्वल मुसकान

एक अनिंद्य रूप की ज्वाला,
देवि, जला दो त्रिभुवन में,
जिसमें अशिव, असत्य, असुंदर,
हो सब भस्म एक क्षण में।

रँग दो मेरे स्वप्न, सजनि, सब
जीवन-मरण अरुण कर दो—
जन्म-जन्म का शून्य पात्र यह
आज बूँद भर में भर दो।

जीवन-दीप

जिसकी एक झलक पाती तो
रवि-शशि की पलकें झुक जातीं,
पूर्ण पयोनिधि की मादकता
मधु की दो लघु बूँदें पातीं,

बिखरी वीणाएँ अम्बर में
महामिलन का स्वर भर आतीं,
एक एक शतदल के उर में
लाख-लाख आँखें खुल जातीं,
वही प्रकाश, इसी में छिप कर,
चुपके से जब देते हो भर,
मेरा लघुतम जीवन-दीपक
कह उठता है विस्मित हो कर—
क्या इसलिए कि फैला हूँ मैं
कण-कण में प्रकाश की प्यास,
लघुतम स्नेह-पात्र में, प्रियतम,
भर देते हो परम प्रकाश।

जागो

जागो जागो हे अनजान !
हे अनजान, हे नादान !
जागो जागो हे अनजान !
देख देख सोने की कड़ियाँ,
मत समझो वैभव की लड़ियाँ,
भोले बंदी, खोलो अँखियाँ,
आखिर हैं वे भी हथकड़ियाँ,
बंधन है जिनकी पहचान !
जागो जागो हे अनजान !
हे अनजान, हे नादान

अधमुने दृगों के कंजकोर—
पर छाया विस्मृति का खुमार;
रँग रहा हृदय ले अश्रुहास
यह चतुर चितेरा सुधिविहान !

मुरझाया फूल

था कली के रूप शैशव में अहो सूखे सुमन,
हास्य करता था, खिलाता अंक में तुमको पवन !
खिल गया जब पूर्ण तू मंजुल सुकोमल पुष्पवर,
लुब्ध मधु के हेतु मँडराने लगे आने भ्रमर !
स्निग्ध किरणें चन्द्र की तुमको हँसाती थीं सदा,
रात तुम पर वारती थी मोतियों की संपदा !
लोरियाँ गा कर मधुप निद्रा विवश करते तुझे,
यत्न माली का रहा आनन्द से भरता तुझे !
कर रहा अठखेलियाँ इतरा सदा उद्यान में,
अन्त का यह दृश्य आया था कभी क्या ध्यान में ?
सो रहा तू अब धरा पर शुष्क बिखराया हुआ,
गन्ध कोमलता नहीं मुख मंजु मुरझाया हुआ।
आज तुमको देख कर चाहक भ्रमर आता नहीं,
लाल अपना राग तुझ पर प्रात बरसाता नहीं!
जिस पवन ने अंक में ले प्यार था तुमको किया
तीव्र झोंके से सुला उसने तुझे भू पर दिया।
कर दिया मधु और सौरभ दान सारा एक दिन,
किंतु रोता कौन है तेरे लिए दानी सुमन ?
मत व्यथित हो फूल ! किस को सुख दिया संसार ने ?
स्वार्थमय सबको बनाया है यहाँ करतार ने !

दुख हो सुखमय सुख हो दुखमय,
उपल बनें पुलकित से निर्झर;
मरु हो जावे उर्वर गायक!

मैं

शलभ मैं शापमय वर हूँ!
किसी का दीप निष्ठुर हूँ!
ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ शृंगार-माला;
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रंगशाला;
नाश में जीवित किसी की साध सुंदर हूँ!
नयन में रह किंतु जलती
पुतलियाँ आगार होंगी;
प्राण में कैसे बसाऊँ
कठिन अग्नि-समाधि होगी;
फिर कहाँ पालूँ तुझे मैं मृत्यु-मंदिर हूँ!
हो रहे झर कर दृगों से
अग्नि-कण भी क्षार शीतल,
पिघलते उर से निकल
निश्वास बनते धूम श्यामल;
एक ज्वाला के बिना मैं राख का घर हूँ!
कौन आया था न जाना
स्वप्न में मुझको जगाने;
याद में उन अँगुलियों के
हैं मुझे पर युग बिताने;
रात के उर में दिवस की चाह हूँ ! कारा

शून्य मेरा जन्म था
अवसान है मुझको सबेरा
प्राण आकुल के लिए
संगी मिला केवल अँधेरा
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ!

दीपक जल

मधुर मधुर मेरे दीपक जल
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदुतन;
दे प्रकाश का सिंधु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल !
पुलक पुलक मेरे दीपक जल !
सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझ से ज्वाला-कण.
विश्वशलभ सिर धुन कहता 'मैं
हाय न जल पाया तुझ में मिल !'
सिहर सिहर मेरे दीपक जल !
जलते नभ में देख असंख्यक,
स्नेहहीन नित कितने दीपक,
जलमय सागर का उर जलता
विद्युत् ले घिरता है बादल !
विहँस विहँस मेरे दीपक जल !
द्रुम के अँग हरित कोमलतम,
ज्वाला को करते हृदयंगम;

वसुधा के जड़ अन्तर में भी.
बंदी है तापों की हलचल !

विखर बिखर मेरे दीपक जल !
मेरी निश्वासों से द्रुततर,
सुभग न तू बुझने का भय कर;
मैं अंचल की ओट किए हूँ;
अपनी मृदु पलकों से चंचल !

सहज सहज मेरे दीपक जल !
सीमा ही लघुता का बंधन,
है अनादि तू मत घड़ियाँ गिन;
मैं दृग के अक्षय कोषों से—
तुझमें भरती हूँ आँसू-जल

सजल सजल मेरे दीपक जल !
तम असीम तेरा प्रकाश चिर,
खेलेंगे नव खेल निरंतर;
तम के अणु अणु में विद्युत् सा—
अमिट चित्र अंकित करता चल !

सरल सरल मेरे दीपक जल !
तू जल जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय;
मधुर मिलन में मिट जाना तू—
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल !

मदिर मदिर मेरे दीपक जल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

श्री सियारामशरण गुप्त

(जन्म संवत १९५२)

बाबू सियारामशरण गुप्त मैथिलीशरण जी के छोटे भाई हैं। आपने भी काव्य-जगत् में अपना प्रतिष्ठित स्थान बना लिया है। आप स्वयं बहुत सरल और निच्छल प्रकृति के मनुष्य हैं, आपकी कविताएँ भी सरल, स्पष्ट और हृदय को छूने वाली होती हैं। भावनाओं, भाषा, छंद, और शैली में आप अन्य कवियों से भिन्न हैं, मौलिक हैं।

कौटुंबिक और सांसारिक संबन्धों का बहुत ही मार्मिक वर्णन आप की रचनाओं में मिलता है। इस दिशा में हिंदी का कोई भी वर्तमान कवि आपको नहीं पाता। आध्यात्मिक भावनाओं से भरी हुई कवितायें भी आपने लिखी हैं, पर उनकी कल्पना इतनी जटिल नहीं कि सर्व साधारण को आनन्द न आवे। करुण-रस का परिपाक तो आपकी कविताओं में खूब हुआ है।

आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। आपने कविता, कहानियाँ, नाटक, उपन्यास सभी कुछ लिखा है। आपकी निम्नलिखित रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं—

काव्य—मौर्य-विजय, अनाथ, आर्द्रा, दूर्वा-दल, आत्मोत्सर्ग, पाथेय, दूरागत गान।

कहानियाँ—कोटर, कुटीर, मानुषी।

पन्यास—गोद।

उनाटक—पुण्य-पर्व।

हो गई होंगी तदपि त्रुटियाँ अनेक;
भान भी जिनका नहीं मन में कुछेक।
उन प्रमादों के कुटिल-कंटक कड़े
गेह में यदि हों यहाँ फैले पड़े,
साथ ही मेरे सभी जल जाँय वे;
बाद मेरे, फिर न चुभने पाँय वे
पूज्य स्वजनों के मृदुल हृद्धाम में;
हों न फिर पीड़क किसी भी काम में।
कौन जाने, किस नगर, किस गेह में,
लालिता माता-पिता के स्नेह में,
भाग्यवंती रूपसी वह है कहाँ,
आयगी मेरे अनंतर जो यहाँ;
हृदय-धन का हृदय हरपाती हुई,
दीप्तिमय नवदीप्ति बरसाती हुई।
चाहती हूँ, तू सुखी हो हे बहन!
शोक यदि आ जाय इस घर में गहन,
तो उसे तू छिन्न कर देगी स्वयं;
दुःख तम भी क्षीण हर लेगी स्वयं।
आज स्वामी आयँगे अब जिस समय,
त्याग कर संपूर्ण चिंता, क्लेश, भय,
मौन रह, कुछ दूसरे ही भाव से
उन पदों पर मैं पड़ूँगी चाव से
आज का वह स्पर्श मेरा हो न लीन,
आज के ही दिन,—रहे वह चिर नवीन!
वे न जान सकें, तदपि होकर अभंग,
वह सदा सेवन करे वह पुण्य संग।

रहे किसी मधु-मास के गुंजार में,
उज्ज्वल-सावन के सरस संचार में,
जाग यह सहसा उन्हें कर दे विकल,
विकल से हो जायें बस वे एक पल
हे सदन, तू तो क्षमा करना मुझे,
सहन करना ही पड़ेगा यह तुझे।
किस लिए थे आज इतने वैद्यजन
पड़ गया अवसन्न जब सब तन-बदन?
अब सभी के सामने ही छोड़ लाज,
रो रहे हो किस लिए हे नाथ, आज?
चल चुकी हूँ; कोटि-कोटि प्रणाम है,
रुँध गया है कंठ, पूर्ण विराम है।

• घट

कुटिल कंकड़ों की कर्कश रज
मल-मल कर सारे तन में,
किस निर्मम निर्दय ने मुझको
बाँधा है इस बंधन में।
फाँसी-सी है पड़ी गले में
नीचे गिरता जाता हूँ;
बार-बार इस अंध-कूप में
इधर-उधर टकराता हूँ।

ऊपर नीचे तम ही तम है,
बंधन है अवलंब यहाँ!
यह भी नहीं समझ में आता
गिर कर मैं जा रहा कहाँ!!

ओ कठोर, तेरी कठोरता
कर दे हमको कुलिश-कठोर।
ओ दुस्सह, तेरी दुस्सहता
सहज सह्य हमको हो जाय;
तेरे प्रलय-घनों की धारा
निर्मल कर हमको धो जाय।
अशनि-पात में निर्घोषित हो,
विजय-घोष इस जीवन का;
तड़ित्तेज में चिर ज्योतिर्मय,
हो उत्थान-पतन तन का।
बंधन-जाल तोड़कर सहसा
इधर-उधर के कूलों का,
तेरी उच्छृंखल धन्या में
पागलपन हो इस मन का।
निजता की संकीर्ण क्षुद्रता
तेरे सुविपुल में खो जाय;
ओ दुस्सह, तेरी दुस्सहता
सहज-सह्य हमको हो जाय।
आ कृतान्त, हमको भी दे जा
निज कृतान्तता का कुछ अंश;
नई सृष्टि के नवोल्लास में
फूट पड़े तेरा विभ्रंश।
नव-पूरित अमृत के घट-सा
दे ऊपर की ओर उछाल—
[illegible] का अन्तस्तल मथ कर
[illegible] विप्लव का

जीर्ण शीर्णता के दुर्गों को,
कुसंस्कार के स्तूपों को
ढा दे एक साथ ही उठकर,
दुर्जय, तेरा क्रोध-कराल।
कुछ भी मूल्य नहीं जीवन का
हो यदि उसके पास न ध्वंस;
ओ कृतांत, हमको भी दे जा
निज कृतांतता का कुछ अंश।
ओ भैरव, कवि की वाणी का
मृदु माधुर्य्य लजा दे आज,
वंशी के ओठों पर अपना
निर्मम शंख बजा दे आज!
नभ को छूकर दूर दूर तक
गूँज उठे तेरा जय-नाद;
घर के भीतर छिपे पड़े जो
बाहर निकल पड़ें साह्लाद।
तिमिर-सिंधु में कूद तैर कर
सुप्रभात-से उठ आवें,
निखिल संकटों के भीतर भी
पावें तेरा पुण्य-प्रसाद।
जीवन-रण के योग्य हमारा
निर्भय साज सजा दे आज,
ओ भैरव, कवि की वाणी में
निर्मम शंख बजा दे आज!

श्री भगवतीचरण वर्मा

(जन्म संवत् १९६०)

श्री भगवतीचरण वर्मा का जन्मस्थान संयुक्तप्रान्त के उन्नाव ज़िले का शफीपुर नामक स्थान है। वे छायावादी कवियों में अनुभूति-प्रधान और स्पष्ट रचनाएँ लिखने में बहुत ऊँचा स्थान रखते हैं। इनकी कविताओं में कलात्मक ढंग, सहानुभूति और प्रवाह रहता है। भाषा सरल और स्पष्टता होती है। कल्पनाएँ क्लिष्ट नहीं होतीं। भावनाएँ हृदय को बेचैन कर देने वाली होती हैं। संगीत से बचपन ही से इनको प्रेम रहा है, वे कवि-सम्मेलनों में बहुत मधुर और भावपूर्ण ढंग से पढ़ते हैं। इनकी कविताओं की शब्द-रचना ललित और संगीतमय होती है। इन्होंने गीत भी लिखे हैं।

इनकी रचनाएँ आध्यात्मिक दर्शन नहीं हैं। वे संसार के, मनुष्य-जीवन के सुख-दुख, उत्थान-पतनों से भरी हुई हैं। यही कारण है कि इनकी रचनाएँ लोगों को बहुत पसंद आती हैं।

कवि के साथ ही वे कुशल कहानीलेखक और उपन्यासकार भी हैं।

'प्रेम-संगीत' के अतिरिक्त इनके दो और ग्रंथ—'मधुकण' नामक कविता-संग्रह तथा 'चित्रलेखा' नामक उपन्यास—प्रकाशित हुए हैं।

हिंदू

(१)

तुम विनाश के लक्ष्य, पतन के कलुषित जीवन;
तुम कलंक के अंक, अवनि के पाप, पुरातन!
तुम जड़ता के दास, रुदन है सारा साहस!
अरे, भूमि पर पड़े हुए हो कायर परवश!
ऐ जीवन के व्यंग कहाँ है वह गौरव, वह मान!
मिटने वाले मिटना ही है क्या दर्शन का ज्ञान?
तुम्हारी सहन-शीलता और
तुम्हारा महत् आत्म-बलिदान,
तुम्हारा धर्म, कर्म, आचार,
तुम्हारी कला, तुम्हारा ज्ञान—
अरे कायर! मिथ्या आलाप—
स्वयं करते अपना अपमान!
अपने ही को धोखा देना, यही असंभव बात,
अपने ही हाथों से अपना तुम करते हो घात।

(२)

तुम ममत्व की मूर्ति, ब्रह्म के सदा उपासक,
निज इच्छा की पूर्ति, वासना के तुम पालक;
भेद-भाव के दास, धर्म के अविकल साधक;
विधवाओं के काल और गायों के पालक—
पशुओं पर है दया, मनुष्यों पर है अत्याचार!
व्यंग-मात्र है अरे पतित यह सब तेरा आचार!
अरे ये इतने कोटि अछूत,
तुम्हारे बे-चौड़ी के दास!

दूर है छूने की ही बात
पार है आना इनका पास
किंतु, फिर भी हो मस्तक-प्रेम,
अरे पागी कैसा विश्वास !

"दुर्विपाक को काट फेंकना" मत करना व्यवहार—
मिटने वाले मिटने का है बस इतना ही सार।

(३)

अरे तपस्वी ! आज कलेवर है कातर;
अरे मनस्वी ! आज बना मन दुख का घर;
अरे यशस्वी ! आज हुआ यश पैर [illegible],
मिटने वाले ! काल-चक्र का कैसा चक्कर !
फिर भी तुम जीवित हो अब तक यही अनोखी बात !
सुख दुखों का है, पर तुम मिटते हो दिन रात।

पात के प्याले से दो बूँद
अभी कम है, तुम मस्तकों आज,
जीवन का परिवर्तन है सार,
बिगड़े बनते हैं सब साज,
परिस्थितियों के हैं अनुरूप
स्वप्न में देखे रंग समाज।

सब समाज के मिटने पे हुए थे किंतु स्वप्न निस्सार,
सदा परिस्थिति के आधार का परिवर्तन सम्पन्न !

(४)

रोये अरे ! [illegible] है [illegible] रोदन,
सोये अरे ! यही जीवन है होता जीवन;
खोये अरे ! [illegible] तुम केवल अपनापन,
"अपनापन" क्या कहा ! अरे इस जग का बन्धन।

[illegible] अपनापन किसका? सोचो ज़रा गुलाम!
[illegible] पर दावा करना है मनुष्य का काम।
किन्तु तुम हो पशुओं से हीन,
तुम्हारा नित होता है ह्रास,
[illegible] हिंसा के लक्ष्य,
[illegible] पर कैसा विश्वास!
[illegible] है [illegible]-पात का नाम
[illegible] तुम कायरता के दास।
[illegible] सदा तुम रोते रहे निराश;
[illegible] ही कर देती है नाश।

(५)

[illegible] आत्म-बल से भुज-बल से,
[illegible] परिस्थिति चक्र प्रबल से,
[illegible] कूट नीति से बल से छल से,
[illegible] सकेगा रिपु-दल से!
[illegible] सबल तुम्हारा न भिक्षा की चाह!
[illegible] वाले यही तुम्हारा चाह!
[illegible] निपट अनजान
[illegible] का यह कैसा बंधन!
[illegible] सारा अस्तित्व
[illegible] भयानक पतन!
[illegible] सफलता, तुम बनो मनुष्य
[illegible] है व्यर्थ तुम्हारा रुदन!
[illegible] तुम्हारा जीवन ही है भार—
[illegible] सोचो बढ़ना है संसार!

दीवानों का संसार

हम दीवानों की क्या हस्ती
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले;
आए बन कर उल्लास अभी
आँसू बन कर बह चले अभी।
सब कहते ही रह गए, अरे
तुम कैसे आए, कहाँ चले!
किस ओर चले? यह मत पूछो,
चलना है, बस इसलिए चले
जग से उसका कुछ लिए चले,
जग को अपना कुछ दिए चले
दो बात कही, दो बात सुनी'
कुछ हँसे और फिर कुछ रोए
छक कर सुख-दुख के घूँटों को
हम एक भाव से पिए चले!
हम भिखमंगों की दुनिया में
स्वच्छंद लुटाकर प्यार चले,
हम एक निसानी सी उर पर
ले असफलता का भार चले,
हम मान-रहित, अपमान-रहित
जी भर कर खुल कर खेल चुके;
हम हँसते-हँसते आज यहाँ
प्राणों की बाजी हार चले!

हम भला बुरा सब भूल चुके,
नत-मस्तक हो मुख मोड़ चले;
अभिशाप उठा कर होठों पर
वरदान दृगों से छोड़ चले,
अब अपना और पराया क्या!
आबाद रहें रुकने वाले!
हम स्वयं बँधे थे और स्वयं
हम अपने बंधन तोड़ चले!

मेरी आग

(१)

निज उर की वेदी पर मैंने महायज्ञ का किया विधान,
सर्वस्व बनाकर आ रक्खे हैं चुन-चुनकर अपने अरमान।
अभिलाषाओं की आहुतियों से आया है आज महान;
और बढ़ाने को आया है अपनी आशा का बलिदान।
अभिमन्त्रित करना है उसको इन आहों का भैरव राग;
जल उठ, जल उठ, अरी धधक उठ महानाश की मेरी आग!

(२)

आमंत्रित हैं यहाँ जगत के आँसू ढाने वाले,
दुख-दल के दिन वैभव के स्वप्नों को मारने वाले,
जीवन की अतृप्त तृष्णा के मधुर मधुर भरने वाले,
कायरता के महा [illegible] के आँखों के [illegible] वाले,
सुख बढ़ाने के साथ हैं जिनके विफल [illegible] नहीं!
जल उठ, जल उठ, अरी धधक उठ महानाश की मेरी आग!

(३)

इस उन्मद में आन-जुटे हैं हँस-हँस बलि होने वाले,
निज अस्तित्व मिटाकर पल में तन-मन-धन खोने वाले,
उर की लाली से इस जग की कालिख को धोने वाले,
हँसने वालों के विषाद पर जी भर कर रोने वाले;
आज आँसुओं का धन लेकर आया है मेरा अनुराग!
जल उठ, जल उठ, अरी धधक उठ महानाश सी मेरी आग!

(४)

यहाँ हृदय वालों का जमघट पीड़ाओं का मेला है;
अर्ध्यदान है अपनेपन का, यह पूजा की वेला है;
आज विस्मरण के प्रांगण में जीवन की अवहेला है,
जो आया है यहाँ प्राण पर वह अपने ही खेला है,
फिर न मिलेंगे ये दीवाने, फिर न मिलेगा इनका त्याग।
जल उठ, जल उठ, अरी धधक उठ महानाश सी मेरी आग!

(५)

लपटें हों विनाश की जिसमें जलता हो ममत्व का ज्ञान,
अभिशापों के अंगारों में झुलस रहा हो विभव विधान;
अरे क्रांति की चिनगारी से तड़प उठे कामना महान,
उच्छ्वासों के धूम्र-पुंज से ढक जावे जग का अभिमान,
आज प्रलय की वह्नि जल उठे जिसमें शोला बने विराग!
जल उठ! जल उठ; अरी धधक उठ! महानाश सी मेरी आग!

किरण-कण

एक दीपक-किरण-कण हूँ।
धूम जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं,
नव प्रभा लेकर चला हूँ, पर जलन के साथ हूँ मैं।
सिद्धि पाकर भी तुम्हारी साधना का ज्वलित क्षण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।
व्योम के उर में अपार भरा हुआ है जो अँधेरा,
और जिसने विश्व को दो बार क्या, सौ बार घेरा,
उस तिमिर का नाश करने के लिए मैं अखिल प्रण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।
शलभ को अमरत्व देकर प्रेम पर मरना सिखाया,
सूर्य का संदेश लेकर रात्रि के उर में समाया,
पर तुम्हारा स्नेह पाकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।
एक दीपक-किरण-कण हूँ।

चन्द्र-किरण

यह चन्द्र-किरण छू कर आई।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

तुम्हारा चंद्र, सूर्य, आकाश,
तुम्हारी संध्या, उषा, प्रकाश;
निशा, दिन, उपवन, वन, मधुमास,
        करो शासन, ऐ राजकुमार !
        खोलती हूँ पिंजड़े का द्वार !!

याचना

हे प्रभु, हे प्रभु जीवन दो !
आँधी आवे, बादल बरसे, बिजली कड़के !
भय-विह्वल हो सारे जग की छाती धड़के !
आशंकित हो जग न फिर भी मेरा मन हो !
                हे प्रभु, हे प्रभु जीवन दो !
लहरें लहरें, डगमग-डगमग नौका डोले !
इन लहरों में यम का पागल हमला बोले !
[illegible] नहीं नाव को मेरी मुझे लगन दो !
                हे प्रभु, हे प्रभु जीवन दो !

पीड़ा का पर्दा

(१)

[illegible], क्या हुआ [illegible] मुख से कहती, [illegible]
[illegible] !"
[illegible], क्या [illegible] !
[illegible] !"
        [illegible]
        [illegible] !
        [illegible]
        [illegible] !

चलते चलें सदा एकाकी,
चलते-चलते ही मिट जावें,
हारिल पंछी से अम्बर में
उड़ते-उड़ते प्राण गँवावें ।

(८)

प्रिये, छोड़ बैठे जो घर हम अब उस घर की याद करें क्यों ?
स्वप्न हो गए दिवस सुखों के उनकी स्मृति में आह भरें क्यों ?
वर्तमान का तीखा प्याला पीलें हँसते हुए, डरें क्यों ?
मरने के पहले ही, बोलो, बार-बार बेकार मरें क्यों !
यह सच है दिल ही तो है यह,
कभी टूट जाता दर्पण-सा,
पर, कठोर जग में रहने को
इसे बनाना है पाहन-सा !

(९)

क्या कहती हो, पर्ण-कुटी में आज भयानक तम है छाया !
दीप जलाने भर को हमने स्नेह नहीं दुनिया में पाया।
यह भी अच्छा है, अब जग की हमें न धुमलावेगी माया।
इसने है निर्वासन हमको है अटूट विद्रोह जगाया।
थके हुए प्राणों में निशिदिन
तीव्र जला करती है ज्वाला !
प्रिये, शाम अब तीखे कर दो,
गहरा भर दो मद का प्याला !

(१०)

सजनि, मनोरंजन अब कैसा बीणा मेरे पास न लाओ !
कोयल बन क्यों व्यर्थ जगत की डाल-डाल पर गीत सुनाओ ।

आज आखिरी बार एक क्षण और तुम्हें देता हूँ, आओ!
इस आकुलतम क्षणकी स्मृतिमें युग-युग महामिलन सुखपाओ!
अब ममता की जंजीरों से
विद्रोही को मुक्त बनाओ!
शस्त्र हाथ में देकर मुझको
समर-भूमि की राह दिखाओ!

(११)

क्यों कहती हो एक घड़ी रुक, मधुर स्नेह-संगीत सुनाऊँ!
सूखी हुई स्नेह क्यारी में क्षण जीवन की धार बहाऊँ!
मेरी साँस-साँस में ज्वाला, बोलो तो, सखि, कैसे गाऊँ?
मुझको जाने दो, इस ज्वाला में जग का अभिमान जलाऊँ?
जग को रहने योग्य बनाऊँ
या अपना अस्तित्व मिटाऊँ।
क्यों बेदर्द जगत् के आगे
पीड़ा को बेपर्द बनाऊँ?

रक्षा-बंधन

(१)

बहन, बाँध दे रक्षा-बंधन मुझे समर में जाना है।
अब के घन-गर्जन में रण का भीषण छिड़ा तराना है।
दे आशीश जननि के चरणों में यह शीश चढ़ाना है।
बहन, पोंछ ले अश्रु गुलामी का यदि दुःख मिटाना है।
अंतिम बार बाँध ले राखी,
कर ले प्यार आखिरी बार—
मुझ को, ज़ालिम ने फाँसी की
डोरी कर रक्खी तैयार।

गीत

अविरत पथ पर चलना री!
शान्ति जीवन का चरम लक्ष्य है
विरति मुक्ति, सब छलना री!
अविरत पथ पर चलना री!
[illegible] में सहसा मरना महान है
पर क्या वह जीवन का सत्य है?
जीवन [illegible] सब शाश्वत है,
[illegible] करके जलना री!
अविरत पथ पर चलना री!
सरल चिता शय्या पर सोना,
कठिन [illegible] सहना-सब खोना,
मिट जाना, पर विकल न होना,
तिल-तिल करके जलना री!
अविरत पथ पर चलना री

उपेक्षित दीप

[illegible] जलित हुई हैं इस दीपक की अन्तिम बार।
[illegible] व्यथा का विस्मृत हुआ करुण संसार।
[illegible] भी जलकर किया न कुटिया का शृंगार।
[illegible] किसी हृदय ने ढाली नहीं स्नेह की धार!
[illegible] बिजली पर मरना है
जहाँ स्नेह का नहीं निशान;
मेरी इस छोटी सी लौ का
यहाँ नहीं हो सकता मान।

आत्म-परिचय

मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूँ,
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूँ;
कर दिया किसी ने झंकृत जिनको छू कर,
मैं साँसों के दो तार लिए फिरता हूँ!
मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूँ,
मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूँ,
जग पूछ रहा उनको, जो जग की गावे,
मैं अपने मन का गान किया करता हूँ!
मैं निज उर के उद्‌गार लिए फिरता हूँ;
मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूँ;
है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता;
मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूँ!
मैं जला हृदय में अग्नि दहा करता हूँ,
सुख-दुख दोनों में मग्न रहा करता हूँ!
जग भव-सागर तरने को नाव बनाए,
मैं मन मौजों पर मस्त बहा करता हूँ!
मैं यौवन का उन्माद लिए फिरता हूँ,
उन्मादों में अवसाद लिए फिरता हूँ,
जो मुझको बाहर हँसा, रुलाती भीतर,
मैं, हाय, किसी की याद लिए फिरता हूँ,
कर यत्न मिटे सब, सत्य किसी ने जाना?
नादान वहीं है, हाय, जहाँ पर दाना!
फिर मूढ़ न क्या जग, जो इस पर भी सीखे,
मैं सीख रहा हूँ, सीखा ज्ञान भुलाना!

बच्चे प्रत्याशा में होंगे,
नीड़ों से झाँक रहे होंगे—
यह ध्यान परों में चिड़ियों के भरता कितनी चंचलता है !
दिन जल्दी जल्दी ढलता है !

मुझ से मिलने को कौन विकल ?
मैं होऊँ किसके हित चंचल ?
यह प्रश्न शिथिल करता पद को भरता उर में विह्वलता है !
दिन जल्दी जल्दी ढलता है।

बीत चली संध्या की वेला !

बीत चली संध्या की वेला
धुँधली प्रतिपल पड़ने वाली,
एक रेख में सिमटी लाली,
कहती है, समाप्त होता है सतरंगे बादल का मेला !
बीत चली संध्या की वेला

नभ में कुछ द्युतिहीन सितारे
माँग रहे हैं हाथ पसारे—
'रजनी आए, रवि-किरणों से हमने है दिन भर दुख झेला।'
बीत चली संध्या की वेला !

अंतरिक्ष में आकुल-आतुर,
कभी इधर उड़, कभी उधर उड़,
पंथ नीड़ का खोज रहा है पिछड़ा पंछी एक अकेला !
बीत चली संध्या की वेला।

राग सदा ऊपर को उठता, आँसू नीचे झर जाते हैं।
कहते हैं, तारे गाते हैं।

मैंने खेल किया जीवन से

मैंने खेल किया जीवन से !
सत्य भवन में मेरे आया,
पर मैं उसको देख न पाया,
दूर न कर पाया मैं, साथी, सपनों का उन्माद नयन से।
मैंने खेल किया जीवन से !
मिलता था बेमोल मुझे सुख,
पर मैंने उससे फेरा मुख,
मैं खरीद बैठा पीड़ा को यौवन के चिर संचित धन से !
मैंने खेल किया जीवन से !
थे बैठे भगवान हृदय में,
देर हुई मुझको निर्णय में,
उन्हें देवता समझा जो थे कुछ भी अधिक नहीं पाहन से।
मैंने खेल किया जीवन से !

विजया दशमी

आज पराजय के पथ में यह कैसी भूली विजय मिली,
सदियों की जंजीर झनझना याद दिलाती कौन चली ?
मेरी कारा टूट जायगी अरी झाँकते ही तेरे।
मुश्किल से अरमान सुलाए, अभी रुके आँसू मेरे।
स्मृतियों से पहले की स्मृतियों, तुम्हें बुलाने कौन गया ?
हमें दासता में मरने दो, क्यों दुहरानी पाठ नया !
तुमने रामचरण की रज ले विजयावलियाँ लिख डालीं!
जिनकी हुंकृति पर सब जग की आँखों की बिखरी लाली!
सुधि है कलियों का झंझा के झोंकों से विजयी होना,
और दुधमुहों के थप्पड़ से सिंहों का सुध-बुध खोना।
सुधि है छोटे से रघु द्वारा इन्द्रासन कँप जाने की!
सुधि है क्षात्र-तेज के आगे भूमंडल थर्राने की !
सुधि है केवल हाथ उठाकर प्रण करते वसुधाधर की!
सुधि है शोणित भरने वाले रणचंडी के खप्पर की!
स्मृतियाँ कुछ कुछ अभी बची हैं विश्व विजय करने वाली।
अब भी कभी-कभी रोती हैं उन पर आँखें मतवाली।
कल ही तो उस चन्द्रगुप्त के सम्मुख यूनानी हारे।
कल ही तो अशोक का पद-रज सिर धरते भूपति सारे!
पर कवि उन्हें याद करने का तुमको है अधिकार नहीं!
भूलो, उन पवित्र चरणों की स्मृति का यह संसार नहीं!
आज सभी कुछ उलट गया है उलटी हवा जमाने की।
आज यहाँ रोने की बारी लज्जित हो मर जाने की।
अब जीवन में पराजयों का अम्बार ही तो बाकी है।
तब तो मृत्यु मृत्यु में थी, अब जीवन में भी झाँकी है।

हिय-हारिल

आज बना हिय-हारिल मेरा
इस सूनी दुनिया में निर्मम
तुम को और कहाँ तक होगा?
मुझे! तुम्हारी स्मृति [illegible]
[illegible] मेरा मानस होगा

[illegible]
[illegible]
मुझे [illegible] की [illegible]
[illegible]

[illegible]
पर न मिला [illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

शब्द-वेध

गूँज रहे हिल-मिल घाटी में
कौन शिखर का ध्यान करे
ऐसा वीर कहाँ कि शैल-रुह
फूलों का मधु-पान करे?
लक्ष्य-वेध है कठिन, अमा का
सूचि-भेद तम-तोम यहाँ,
ध्वनि पर छोड़ूँ तीर, कौन यह
शब्द-वेध संधान करे?

'सूनी ऊपर सेज पिया की
दीवानी मीरा भी ले,
अपना वेश वही देखेगा—
जो अशेष बलिदान करे!
जीवन की जल गई कामना
तब डरो यहाँ विष के दाने,
लहरायेगी लता, आग—
बिजली का सा सामान करे!

मनकी अपना नहीं अपनी—
दे का अपना मिल साथ मला,
यार जिसे प्यारा हो वह
तैयार स्वयं प्रस्थान करे!
फूल झड़े; आँख झड़े वारिद का
के संकेत मात्र स्पष्ट हुआ,
हर दिन का है मन दूरस्थ क्या
दूरों में पहचान करे!

शिर देकर सौदा लेते हैं
जिन्हें प्रेम का रंग चढ़ा
फीका रंग रहा तो घर तज
क्या गैरिक-परिधान करे!
उस पद की मंजीर गूँजती;
हो नीरव-सुनसान जहाँ,
सुनना हो तो तज वसंत,
निज को पहले वीरान करे!

मणि पर है आवरण, दीप से तूफाँ में कब काम चला?
दुर्गम पंथ, दूर जाना है, क्या पंथी अनजान करे?
तरी खेलती रहे लहर पर यह भी एक मर्म कैसा?
डाँड छोड़, पतवार तोड़कर तू कवि निर्भय गान करे!

अगेय की ओर

गायक, गान, गेय से आगे मैं अगेय स्वन का श्रोता मन!

सुनना श्रवण चाहते अब तक
भेद हृदय जो जान चुका है,
बुद्धि खोजती उन्हें, जिन्हें
जीवन निज को कर दान चुका है,
खो जाने को प्राण विकल हैं
चढ़ उन पद-पद्मों के ऊपर,
बाहु पाश से दूर जिन्हें
विश्वास हृदय का मान चुका है,

जोह रहे उनका पथ दृग, जिनको पहचान गया है चिंतन,
गायक, गान, गेय से आगे, मैं अगेय स्वन श्रोता मन!

उछल-उछल बह रहा अगम की
ओर अभय इन प्राणों का जल,

[illegible] को युगल घाटियाँ
[illegible] जिसका पथ निष्फल,
मैं [illegible] कर चुप हूँ,
[illegible] यह न्यस्त पुलिन पर—
[illegible] उस रव का?
[illegible] कल कल ध्वनि केवल"
[illegible] ? मैं था प्राण-प्रवाह चिरंतन ?
[illegible] था मैं अगोचर स्वन का श्रोता मन !
[illegible] वह कवि था,
[illegible] जगने में,
[illegible] मूक कथा वह,
[illegible] मगन में ?
[illegible] रही है
[illegible] पवन में,
[illegible] जीवन
[illegible] मगन में।
[illegible] अज्ञात कौन ? कौन है स्वांग !
[illegible] स्वन का श्रोता मन ?
[illegible] की
[illegible] का में,
[illegible] की,
[illegible] में।
[illegible] पर
[illegible] चिरंतन
[illegible] सनातन
[illegible] में।
[illegible] में इन स्पर्शों का स्पंदन ?
[illegible] मैं अगोचर स्वन का श्रोता मन ?

संकेत

पृष्ठ २२—करुणा-सरिता—इस कविता में ईश्वर की करुणा को नदी का रूपक दिया है।

पृष्ठ २२—होली—इस कविता में होली के रीति-रिवाजों के बहाने देश में फैली हुई कुरीतियों का दिग्दर्शन कराया गया है

पृष्ठ २३—प्रात-समीरन—इस कविता में प्रात-समीरन को अनेक रूपकों और उपमाओं में बाँधा है तथा प्रभात-काल के सौन्दर्य का भी वर्णन किया है।

पृष्ठ २५—अस्थिर-जीवन—इस कविता में कवि ने संकेत किया है कि मानो हर घड़ी मौत के मुँह की ओर बढ़ा चला जा रहा है।

पृष्ठ २५—भारत-दुर्दशा—इस कविता में कवि ने भारत के अतीत गौरव और वर्तमान दुर्दशा का चित्र खींचा है।

पृष्ठ ३०—संग्राम-निन्दा—यह रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' की एक बड़ी कविता का कुछ अंश है। इसमें कवि ने संग्राम की अर्थात् हिंसा की निन्दा की है।

पृष्ठ ३१—अमलतास—अमलतास एक प्रकार का वृक्ष होता है। ग्रीष्म की दोपहरी में जब सब तरह के वृक्ष मुरझाया करते हैं तब अमलतास के पीले सुमन मुसकराते नज़र आते हैं। कवि कहता है कि अमलतास बसंती रंग से रँगा हुआ है, अर्थात् अपने प्रभु बसंत की भक्ति में तल्लीन है, इसलिए उस पर घोर ग्रीष्म का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जो ईश्वर की भक्ति में लीन रहता है उसे संसार के संकट भी कष्ट नहीं पहुँचा सकते।

पृष्ठ ३२—लक्ष्मी—इस कविता में भारत के प्राचीन शास्त्रों की मान्यता के अनुसार लक्ष्मी का गुण गाया गया है।

पृष्ठ ३७—हिमालय—इस कविता में पं० श्रीधर पाठक ने हिमालय के सौंदर्य का चित्र खींचा है

पृष्ठ ३८—भारत-गीत—श्रीधर पाठक ने देश का गौरव गाने के लिए कई गीत लिखे हैं जो 'भारत-गीत' नामक पुस्तक में प्रकाशित हुए हैं। यह गीत भी उसी पुस्तक से लिया गया है। इसमें भारत के बल-विक्रम वैभव-गौरव का वर्णन किया गया है।

पृष्ठ ३६—छात्र—इसमें छात्रों को—देश के नौजवानों को—देश के कर्णधार बनने का संदेश दिया गया है।

पृष्ठ ४०—आर्य-महिला—इस कविता में आर्य-महिला के शील श्री, सौंदर्य और शक्ति का वर्णन किया गया है।

पृष्ठ २४—दीपावली—इस कविता में श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने दीपावली की आभा का वर्णन किया है। कविता की ललित शब्दावली उसकी विशेषता है।

पृष्ठ ४२—भारत के नवयुवक—इस कविता में कवि ने भारत के नवयुवकों को देश की दीन दशा को दूर करने के लिए उत्साहित किया है।

पृष्ठ ४५—शक्ति—इस कविता में कवि ने बताया है कि शक्तिवान वह है जो शक्ति का उपयोग निर्बलों की सहायता के लिए करता है, न कि अत्याचार करने को।

पृष्ठ ४६—प्रिय-प्रवास—इस कविता में उस समय का करुण चित्र खींचा है जब अक्रूर कृष्ण बलराम को नन्द के यहाँ से मथुरा ले गये थे। नन्द, यशोदा तथा संपूर्ण ब्रज-मंडल के वियोग-व्यथित हृदय का चीत्कार इस कविता में है, जो बहुत ही मार्मिक है। यह कविता श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'प्रिय-प्रवास' महाकाव्य का अंश है।

पृष्ठ ५२—आगे—इस कविता में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने मनुष्य को सदा अपने लक्ष्य की ओर बढ़ जाने का आदेश दिया है। पिछली

असफलताओं और भावी बाधाओं की परवाह न करते हुए आगे बढ़ते जाना ही मनुष्य का स्वाभाविक धर्म होना चाहिए।

पृष्ठ ५३—एक फूल—यह कविता संभवतः बाबू मैथिलीशरण गुप्त के इकलौते बेटे की मृत्यु के समय इन्होंने लिखी थी। इन्होंने उस को अपने जीवन के एक फूल की उपमा दी है। कविता बहुत मार्मिक है।

पृष्ठ ५४—क्षार-पारावार—इस कविता में कवि क्षुब्ध खारे महा समुद्र को अपनी मर्यादा न छोड़ने के लिए कह रहा है। वह कहता है तू महान है। तेरे सामने पृथ्वी तुच्छ है, व्योम तेरी ऊर्मि में, आवर्त में पाताल है, तेरा बाष्प संसार में रस-वृष्टि करता है। तुझे सहिष्णुता नहीं छोड़नी चाहिए। बलशाली और महान व्यक्तियों को संयत और सौम्य होना शोभा देता है। कविता में समुद्र का वर्णन बहुत सुंदर हुआ है।

पृष्ठ ५६—निर्झर—इस कविता में निर्झर का जीवन-संगीत सुनाया गया है। वह पत्थर को भी फोड़ कर बह पड़ा है, और रास्ते की बाधाओं को लाँघता हुआ, संसार में हरियाली भरता हुआ, सब को सुख पहुँचाता हुआ प्रियतम समुद्र से मिलने बढ़ रहा है। इस कविता को मनुष्य-जीवन रूपी निर्झर के साथ भी मिलाया जा सकता है। वह भी विघ्नों के पत्थर को तोड़ कर बह पड़ा है, वह सांसारिक बाधाओं को लाँघता हुआ जगत् का मंगल करता हुआ, सब की प्यास बुझाता हुआ 'प्रियतम' से मिल जावेगा। यह रचना छायावाद की कोटि में आती है।

पृष्ठ ५९—उर्मिला की विरह-वेदना—गुप्तजी के प्रसिद्ध महाकाव्य 'साकेत' से तीन गीत लिए गए हैं। वाल्मीकि, तुलसीदास आदि महाकवियों ने राम-चरित लिखते समय लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला को सर्वथा भुला दिया है। १४ वर्ष तक लक्ष्मण वन में रहे, उस समय वियोगिनी उर्मिला का क्या हाल रहा होगा यह किसी ने नहीं लिखा।

चाँदनी में, हेमंत में, ताजमहल किन विविध सुंदर रूपों में नज़र आता है, वह इस कविता में बहुत सुंदर ढंग से वर्णित है। भाव, भाषा और कल्पना सभी दृष्टियों से रचना उत्कृष्ट है।

पृष्ठ ७५—वेदना-गीत से—इस कविता में कवि कोई वेदना-गीत सुनकर विह्वल हो उठा है। वह उसे संबोधन करके अनेक प्रश्न पूछता है कि तुम कुंजों में नहीं रुकते, टेकरियों पर भी चढ़कर आ जाते हो और श्रोता के मस्तक को झुकाने लगते हो। आगे जाकर कवि कहता है कि यहाँ तुम्हारा कौन माई॰ है? खाँस, खाँस, कुछ तुम्हारी दरारों का उपहास करते हैं। मतलब यह है कि संसार वेदना के गीतों को नहीं सुनता—दूसरे का दुख देखने का किसी को अवकाश नहीं है। अंत में कवि कहता है कि ओ वेदना के गीत, अब हिमालय पर तुम्हारी पुकार हुई है—अब तुम कराह नहीं हुंकार बन कर आओ। और जवानों को (यानी नवयुवकों को) बलि के दरवाज़े पर चढ़ाने को उत्साहित करो। कविता के अंत में बलिदान की भावना जाग्रत करना 'एक भारतीय आत्मा' की अपनी विशेषता है।

पृष्ठ ७६—बलिदान—इस कविता में दिखाया गया है कि बलिदान व्यर्थ नहीं जाता। बलिदान वह बीज है जिससे विजय का वृक्ष उपजता है।

पृष्ठ ७७—उन्मूलित वृक्ष—यह कविता चतुर्वेदी जी ने तब लिखी थी जब उन्हें जबलपुर से प्रकाशित होने वाले 'कर्मवीर' से अलग किया गया था। जिस पत्र को प्रारंभ करने और प्रतिष्ठित करने में उन्होंने अपना सब कुछ लगा दिया, जब वहीं से उन्हें अलग होना पड़ा तो दुखी होकर यह कविता लिखी। कविता के साथ कवि की उस समय की मनो-दशा जान लेने पर पाठक इसका मर्म अच्छी तरह समझ सकेंगे।

पृष्ठ ७८—कोकिल बोलो तो—यह चतुर्वेदी जी की बहुत

अंतःपुर में प्रियतम की झाँकी पाता है। इस अंतःपुर में वह स्वर की डोर पकड़ कर उतरता है। त्रिभुवन का आलोक उसके अंतर में भर जाता है इस लिए बाहरी संसार उसके लिए केवल अंधकार मात्र रह जाता है।

मूक चित्रकार में कवि ने बताया है कि मौन ही चित्रकार की भाषा है, जिसको मौन भाषा में सुवन मादक रूप, तारिका, इन्द्र-धनुष आदि प्राकृतिक सौंदर्य में बोलता रहता है। चित्रकार त्रिभुवन की भाषा को मूक बना कर रख लेता है।

बधिर कवि में कवि बताता है कि कवि अपनी साधना में तल्लीन है। उसे विधि-निषेध के बंधन, जग के व्यंग्य, उपहास, ताने सुनने का अवकाश नहीं है। वह बहरा है, उसे संसार की समालोचना नहीं सुनाई देती। वह अपनी साधना में निरत है।

पृष्ठ १२८—अनुरोध—यह रहस्यवादी कविता है। इसमें सुंदरी के रूप में परमात्मा की कल्पना की गई है उससे अपने रूप की ज्वाला में अतिरत, अतृप्त, असुंदर को जला कर भस्म कर देने का अनुरोध किया गया है।

पृष्ठ १२८—जीवन-दीप—इस कविता में अनुपम दीपक में परम प्रकाश की, आत्मा में परमात्मा की कल्पना की गई है।

पृष्ठ १२६—जागो—यह मिलिंद जी के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक का एक गीत है। इसमें पराधीनता में सुख अनुभव करने वालों को चेतावनी दी गई है।

पृष्ठ १३१—रश्मि—यह कविता श्रीमती महादेवी वर्मा के 'रश्मि' नामक काव्यसंग्रह का एक गीत है। इसमें बताया गया है कि उस महाप्रकाश की 'एक किरण' के आगमन से ही विश्व स्पंदित, प्रकाशित और पुलकित हो उठता है। अर्थात् परमात्मा का पाते ही साधक की आँखों में विश्व हास-उल्लासमय हो जाता है।

पार करके लक्ष्य तक पहुँचना ही पड़ेगा। यही उसका धर्म है। इस कविता में सदा कर्म-रत रहने का आदेश है।

पृष्ठ १५०—हिन्दू—इस कविता में हिन्दू की वर्तमान पतित अवस्था, दुर्बलता, मोहान्धता, रूढ़िवाद और मिथ्या अभिमान का खाका खींचा है और उसे आत्म-निर्भर होकर अपने पूर्व गौरव को प्राप्त करने का आदेश दिया है।

पृष्ठ १५३—दीवानों का संसार—जिन्हें लोग दीवाने कहते हैं वे वास्तव में परमहंस और आत्म-ज्ञानी होते हैं। वे संसार के सुख-दुख समान रूप से ग्रहण करते हैं। बिना राग-विराग के संसार के सभी कार्य करते हुए यहाँ से चले जाते हैं। ऐसे ही दीवाने का रूप वर्मा जी ने इस कविता में दिखाया है।

पृष्ठ १५४—मेरी आग—इस कविता में सर्वस्व का बलिदान करने वाले क्रान्ति देवी के उपासक के उद्गार व्यक्त किए हैं। जो बलि-पथ का यात्री है वह अपने सारे अरमान, आशा-अभिलाषाओं की की आहुति दे डालता है। यहाँ तक वह जीवन की भी अवहेलना करता है। ऐसे ही लोग क्रान्ति की प्रलयकरी ज्वाला जगाते हैं।

पृष्ठ १५७—अशांत—इस कविता में एक निराश और अशांत हृदय का चित्र है। अशांत हृदय सब वस्तुओं में दुख की छाया देखता है, लताओं में साँप छिपे हैं, शांति की किरणों के पीछे अशांति का अंधकार छिपा है, हास्य में रुदन, प्रेम में घृणा, दया में रोष, पुण्य में दोष उसे नज़र आता है। ऐसी अशांत हृदय की मनस्थिति होती।

पृष्ठ १५८—ये गजरे तारों वाले—इस कविता में कवि ने एक मालिन के रूप में रात्रि का चित्र खींचा है। रजनी-बाला तारों के गजरे लेकर संसार में बेचने निकली है। कवि कहता है कि यदि प्रभात तक कोई इनका खरीदने वाला न मिले तो इन्हें फूलों पर ओस बना कर बिखरा देना।

पृष्ठ १५८—यह तुम्हारा हास आया—निराशा के क्षणों में किसी 'अज्ञात' का सहारा प्राणी को मिलता रहता है। जिस समय ... ओं से आँसू बह पड़ते हैं उस समय भी तीर की तरह रवि-रश्मि ... सहसा आ पहुँचता है। कोकिल हृदय को चीर कर रोती है, ... ओं के हृदय में उसकी प्रतिध्वनि समा जाती है। अर्थात् कई दुख ... भी भावनाएँ उसे घेर लेती हैं, उनसे भी प्राणी उसके (ईश्वर के) ... िक निकट होता जाता है।

पृष्ठ १६०—किरण-कण—इस कविता में जीवन की एक दीपक ... की किरण के रूप में तस्वीर खींची गई है। इस किरण में प्रकाश है ... लेकिन जलन भी है, सिद्धि मिल चुकी है फिर भी साधना समाप्त नहीं हुई है। जीवन तो एक अविरत साधना है, अविराम जलते रहना है।

देखने में छोटी सी किरन है लेकिन वह संपूर्ण विश्व में फैले हुए अन्धकार को दूर करने का प्रण लेकर आई है। लघु होते हुए भी महान है।

यह किरन पतंगे को मरना सिखाती है, सूर्य का संदेश रात्रि के समय सुनाती है। इतना महान जिसका व्यक्तित्व है, 'वह स्नेह समाप्त हो जाने पर उसी में समा जाती है जिससे पैदा हुई थी। यही तो आत्मा परमात्मा का सम्बन्ध है।

पृष्ठ १६०—चन्द्र-किरण—आकाश से पृथ्वी पर उतरने वाली चन्द्र-किरण के प्रति यह उक्ति है। कवि कहता है जिस आकाश में नक्षत्र है, आलोक है, उसे छोड़कर मलीन, पीड़ा, रुदन और शोक से भरी मेरी पृथ्वी पर क्यों आई है? कवि ने एक कोमल भावना को छुआ है।

पृष्ठ १६१—आँसू—इस कविता में आँसू पर उक्तियाँ हैं। अंत में कवि और वैज्ञानिक की दृष्टि का अंतर भी दिखाया गया है। कवि जिसे आँसू कहता है—वह वैज्ञानिक के लिए जल है। कवि जिस प्रकार

हिन्दी प्रभाकर की सर्वोत्तम सहायक पुस्तकें

[illegible] नाटक [illegible]

[ले०—श्री [illegible] विद्यार्थी]

[illegible] इनके होते या अन्य हिन्दी कुंजी या [illegible] पुस्तक की [illegible] नहीं रहती। [illegible]

विक्रमादित्य की कुंजी

(टीकाकार—श्री [illegible] [illegible]

[illegible] कालेज [illegible]

[illegible] लेखक ने इसमें मूल नाटक के [illegible] कठिन [illegible] के अर्थ, [illegible], [illegible] और [illegible]-परिचय देकर हिन्दी कुंजी तैयार की है, जिससे विद्यार्थी सहज में ही इस पुस्तक को समझ सकते हैं। मूल्य [illegible])

प्रबन्ध-प्रभाकर

[ले०—श्री [illegible] एम. ए.]

इस पुस्तक में १९२४ से लेकर अब तक के प्रभाकर परीक्षा में आये हुए निबन्ध दिए गए हैं। साथ ही कुछ अन्य साहित्यिक लेख भी जोड़ दिये गये हैं। निबन्धों की भाषा सरल होने पर भी परि-पक्व है, जो विद्यार्थियों के लिए आदर्श [illegible] [illegible] सकती है। [illegible])

मानव जाति का संघर्ष और प्रगति की प्रश्नोत्तरी

(ले०—[illegible] विद्यालंकार)

इसमें प्रभाकर के [illegible] वर्षों के [illegible] [illegible] के लिए नई [illegible] 'मानवजाति का संघर्ष और प्रगति' नामक पुस्तक में से पूछे जाने वाले सभी सम्भावित प्रश्न और उनके उत्तर दिये गये हैं। मूल्य [illegible])